* श्री *

रवीन्द्र-कविता-कानन ।

लेखक—

पं० सूर्य्यकान्त त्रिपाठी ।

"निराला"

प्रकाशक

निहालचन्द एण्ड को०,

१, नारायण बाबू लेन, कलकत्ता ।

यम बार १००० } सं० १९८५ विक्रमी { मूल्य २)

प्रकाशक—

निहालचन्द वर्म्मा

नं० १ नारायन बाबू लेन,

कलकत्ता।

मुद्रक—

दयाराम बेरी।

"श्रीकृष्ण प्रेस"

१, नारायण बाबू लेन, कलक
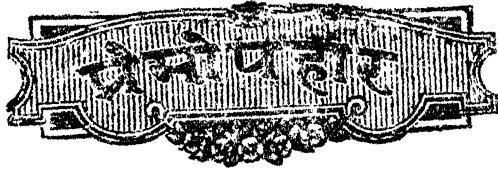
प्रकाशकका वक्तव्य ।

मेरी बहुत दिनोंसे प्रबल इच्छा थी कि विश्व-कवि श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी चुनी हुई जगद्-प्रसिद्ध कविताओंका रसास्वादन हिन्दी—पाठकोंको भी चखाऊं। बहुत दिनों तक मेरी यह इच्छा पूरी न हुई। जब तक कोई ऐसा प्रतिभाशाली लेखक न मिलता जो रविबाबूके भावोंको अच्छी तरह समझ कर हिन्दी-भाषा-भाषियोंको उनकी चमत्कारी कविताओंका अर्थ समझाता तब तक मेरी इस इच्छाका पूर्ण होना कठिन ही था। परन्तु जिस कामको मनुष्य करना विचार लेता है उसमें दैवी सहायता भी अवश्य प्राप्त हो जाती है। एक दिन इसी विषयपर श्रीयुक्त पं० सूर्यकान्तजी त्रिपाठी "निराला" से मेरी बात-चीत हुई मैंने रविबाबूके विषयका उनमें बड़ा भारी ज्ञान पाया। बस फिर क्या था, मैंने उनसे अनुरोध किया कि आप एक ऐसा ग्रन्थ लिखें जिसमें विश्व-कविकी सब प्रकारकी सुन्दर और उपकारी कविताओंपर आलोचना हो और उनके भावोंको हिन्दीके पाठक अच्छी तरह समझ सकें। उन्होंने मेरे इस अनुरोधको स्वीकार कर लिया, बोले - "यह काम शीघ्र न होगा इसलिये मैं चाहता हूं आपके यहां मासिक वेतनपर रहकर इस ग्रन्थका सम्पादन करूं।" मैंने सहर्ष उनकी यह बात मान ली और उन्होंने लगा दिया हाथ इस ग्रन्थ रत्नके लिखनेमें।

श्री पं० सूर्यकान्तजी त्रिपाठीने इस ग्रन्थका बड़ी सावधानीके साथ जैसा मैं चाहता था वैसा ही सम्पादन किया। मुझे इस ग्रन्थकी एक एक लाईन साहित्य-रससे भरी हुई प्रतीत हुई। इस ग्रन्थके समाप्त होने पर यह निश्चय हुआ कि विश्व-कविकी संक्षिप्त जीवनी भी इसके आगे अवश्य लगाई जाये। उसमें भी हाथ लग गया। उस समय विश्व-कवि भारतमें नहीं थे, इसलिये उनकी जीवन-घटनाओंको संग्रह करनेमें पं० सूर्यकान्तजी तथा मुझे बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। बहुत खोजने पर भी बंग साहित्यमें उनकी कोई जीवनी या जीवनकी सिलसिलेवार घटनायें हमलोगोंको प्राप्त न हो सकीं। तब हमलोगोंने उनके कुटुम्बियोंसे जोड़ासाकू वालेभवनमें मिलकर बातें पूछनी शुरू कीं। जिस प्रकार उनलोगोंसे नोट मिले उसी प्रकार पण्डित-जीने उन्हें लिपिबद्ध करना आरम्भ कर दिया, परन्तु जबतक किसी कामका समय नहीं आता तबतक वह किसी प्रकार भी पूरा नहीं होता चाहे कितना भी उद्योग किया जाये।

अतः बहुत खोज ढूंढ़ करने पर भी पण्डितजीको उनके विषयके पूरे नोट नहीं प्राप्त हुए अब उन्होंने बंग साहित्यके मासिक पत्रोंकी फाइलें टटोलकर मसाला संग्रह करना विचारा। इस कार्यमें उन्हें बहुत दिन लग गये और उन्हें बाहर जानेके लिये लाचार होना पड़ा।

वह इसे लिखते लिखते ही बाहर चले गए। तबसे उनको इस जीवनीके पूर्ण करनेका मौका ही नहीं मिला, उसी थोड़ेसे कामके लिये इस ग्रन्थका प्रकाशन सवा साल रुका रहा। अन्तमें मैंने अपने परम मित्र श्री पण्डित नरोत्तम जी व्यास

से जीवनीका शेषाँश पूर्ण करनेका अनुरोध किया। उनके ऊपर इस समय कामका बहुत ही बोझ था तथापि उन्होंने ग्रन्थका प्रकाशन रुका हुआ देखकर उसे किसी प्रकार पूरा कर दिया। इसके लिये मैं अपने मित्रका पूरा आभारी हूं।

मेरी रायमें यह ग्रन्थ साहित्यकी सुन्दर वस्तु है और विश्वकविके भावोंको बतलाने वाला सुन्दर पथ-दर्शक है। इसमें विश्वकविकी चुनी हुई भावमय सुन्दर कविता देकर उसका हिन्दीमें अर्थ और उसके नीचे विश्वकविने किस भावमें प्रेरित हो कर वह कविता लिखी इसका खुलासा कर दिया गया है। इसके पढ़नेसे हिन्दी-पाठक विश्वकविके भावोंको अच्छी तरह समझ सकेंगे और घर बैठे ही उनके साथ साक्षातकार कर सकेंगे

हमें आशा ही नहीं पूरा :भरोसा है कि हिन्दी-पाठक इस ग्रंथको अपनाकर हमारी चिर अभिलाषाको सफल करेंगे। यदि पाठकोंने इस ग्रन्थको पसन्दकर हमारा उत्साह बढ़ाया तो हम और भी सुन्दर साहित्य प्रकाशित करनेका प्रयत्न करेंगे।

लेखककी अनुपस्थितिमें यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है इसलिये कुछ गलतियोंका रह जाना सम्भव है। अतः उसके लिये हम पहले ही पाठकोंसे क्षमा मांग लेना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

विनम्र :—

निहालचन्द वर्मा।

प्रकाशक

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ।

परिचय।

रवीन्द्रनाथके जीवनके साथ बंगभाषाका बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है, दोनोंके प्राण जैसे एक हों। रवीन्द्रनाथ सूर्य हैं और बंगभाषाका साहित्य सुन्दर पद्म। रवीन्द्रनाथके उदयके पश्चात् ही इसका परिपूर्ण विकास हुआ है। रवीन्द्रनाथके आनेके पहले इसके सौन्दर्यकी यह छटा न थी, न सुगन्धकी इतनी तरंगे संसारमें फैली थीं। पश्चिमी विद्वानोंके हृदयमें वंगभाषाके प्रति उस समय इस तरहका अनुराग न था। वे मधुलुब्ध भौंरेकी तरह इसकी ओर उस समय इतना न खिंचे थे।

वह बङ्गभाषाके जागरणकी पहली अवस्था थी। कुछ बङ्गाली जगे भी थे, परन्तु अधिकांशमें लोग जग कर अंगड़ाइयां ही ले रहे थे। आंखोंसे सुषुप्तिका नशा न छूटा था। आलस्य और शिथिलता दूर न हुई थी। उस समय मधुर प्रभातीके स्वरोंमें उन्हें सचेत करनेकी आवश्यकता थी। उनकी प्रकृति को यह कमी खटक रही थी। जीवनकी प्रगति, रूखी कर्तव्य-निष्ठा और कर्मतत्परताको संगीत और कविताकी सदा ही जरूरत रही है। बिना इसके जीवन और कर्म बोझ हो जाते

हैं। चित्तउच्चाटके साथ ही संसार भी उदास हो जाता है। वह जीवन निरर्थक, नीरस और प्राणहीन सा हो जाता है।

प्रकृतिकी कमी भी प्रकृतिके द्वारा ही पूर्ण होती है। जागरण के प्रथम प्रभातमें आवेश भरी भैरवी बंगालियोंने सुनी,—वह संगीत, वह तान, वह स्वर, बस जैसा चाहिये वैसा ही जातिके जागरणको कर्मकी सफलता तक पहुंचाने, चलकर जगह-जगह पर थकी बैठी हुई जातिको कविता और संगीतके द्वारा आश्वासन और उत्साह देनेके लिये उसका अमर कवि आया, प्रकृतिने प्रकृतिका अभाव पूरा कर दिया। ये सौभाग्यमान पुरुष बंगालके जातीय महाकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर हैं।

उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तिम चरणसे लेकर बीसवीं शताब्दी के पूर्ण प्रथम चरण तक, अबतक रवीन्द्रनाथ कविता साहित्यमें संसारके सर्वश्रेष्ठ महाकवि हैं। इनके छन्दोंको अनगिनित आवर्तों और स्वर-हिलोरोंकी मधुर अगणित थपकियोंसे पूर्व और पश्चिमकी पथरीली चट्टानें ढहकर नष्ट हो गईं—विषमता की जगह समताकी सृष्टि हुई। प्रतिभाके प्रासादमें संसारने रवीन्द्रनाथको सर्वोच्च स्थान दिया। देखा गया कि एक रवीन्द्रनाथमें बड़े-बड़े कितने ही महाकवियोंके गुण एक साथ मौजूद हैं। परन्तु इस बीसवीं सदीमें जिसे प्राप्त कर संसार जन्मोत्सव मना रहा है, वह कभी विकसित, पल्लवित, उच्छ्वसित, मुकुलित, कुसुमित, सुरभित और फलित होनेसे पहले अङ्कुरित दशामें था।

परिचय ।

अङ्कुरको देखकर उसके भविष्य-विस्तारके सम्बन्धमें अनुमान लड़ाना निरर्थक होता है। क्योंकि प्रायः सब अङ्कुर एक ही तरहके होते हैं। उनमें कौन होनहार है और कौन नहीं, यह बतलाना ज़रा मुश्किल है। इसी तरह, वर्त्तमानके महाकविको उनके बालपनकी क्रीड़ाएं देखकर पहचान लेना, उनके भविष्यके सम्बन्धमें सार्थक कल्पना करना, असम्भव है। क्योंकि उनके बालपनमें कोई ऐसी विचित्रता नहीं मिलती, जिससे यौवन-कालकी महत्ता सूचित हो। जो लोग वर्तमानके साथ अतीतकी शृङ्खला जोड़ते हैं, वे वर्तमानको देखकर ही उसके अनुकूल अतीतकी युक्तियां रखते हैं। रवीन्द्रनाथके बाल्यकी वह कृश नदी उसका वह छोटासा तट, सब नदियोंकी तरह पानीकी क्षुद्र चञ्चलता, आनन्द, आवर्त्त, गीत और नृत्य ; यह सब देखकर उसके भविष्य-विस्तारकी कल्पना कर लेना सरासर दुस्साहस है।

जिस समय रवीन्द्रनाथ अपने बालपनके क्रीड़ा-भवनमें केलियोंकी कच्ची दीवारें उठाने और ढहानेमें जीवनकी सार्थकता पूरी रहे थे अपना आवश्यक प्रथम अभिनय खेल रहे थे, वह बङ्ग-साहित्यका निरा बाल्यकाल ही न था, न वह कैशोर और यौवनका चुम्बन-स्थल ही था वह किशोरताकी मध्यस्थ अवस्था थी बाल्य डूब रहा था और सौन्दर्यमें रह-रहकर एक खिंचाव आ रहा था। बाल्यकी स्मृति विस्मृति और एक दूरकी विस्मृति स्मृति हो रही थी। बङ्गभाषा उस समय नौ वर्षकी एक बालिका थी।

उस समय राजा राममोहनरायके द्वारा बंगभाषामें गद्यका जन्म हो चुका था। उनकी प्रभावशालिनी लेखनीकी बङ्गला साहित्यमें मुहर लग चुकी थी। भाषामें शोधन और मार्जनमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर हाथ लगा चुके थे। कविताकी नई ज्योति खुल चुकी थी—हेमचन्द्र मैदानमें आ चुके थे। बंकिम-चन्द्र उपन्यास और गद्य साहित्यमें जोवन डाल चुके थे। नवीन चन्द्रकी ओजस्विनी कविताएं निकल रही थीं। मधुसूदनदत्तके द्वारा अमित्राक्षर छन्दकी सृष्टि हो गई थी।

इतना सब हो जाने पर भी वह बंगभाषामें यौवनका सुभ भाव न था। जो कुछ था, वह बाल्य और किशोरताका परि-चय मात्र हा था। किशोरी बङ्गभाषाके साथ इस समय अपनी मातृभूमिकी मृदुल गोदपर खेल रहे थे किशोर रवीन्द्रनाथ—बङ्ग-भाषाके यौवनके नायक—उसकी लीलाके मुख्य सहचर—उसके तीसरे युगके एकच्छत्र सम्राट।

कलकत्ताके अपने जोड़ासांको भवनमें १८६१ को ६ मईको रवीन्द्रनाथ पैदा हुए थे। इस वंशकी प्रतिष्ठा बङ्गालमें पहले दर्जेकी समझी जाती है। इसके अलावा इस वंशको एक और सौभाग्य प्राप्त है। यह सौभाग्य श्रीमानोंको अक्सर नहीं मिलता। इस वंशमें लक्ष्मी और सरस्वतीकी पहले ही से समान दृष्टि है। इसके लिये ठाकुर-वंशकी बङ्गालमें विशेष प्रसिद्धि भी है। लक्ष्मी और सरस्वती के पारस्परिक विरोधकी कितनी ही कहा-नियां हिन्दुस्तानमें मशहूर हैं। बङ्गालमें इन दोनोंकी मित्रताके

उदाहरणमें सबसे पहले ठाकुर घरानेका ही नाम लिया जाता है। रवीन्द्रनाथके पिता स्वर्गीय महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर थे और पितामह स्वर्गीय द्वारकानाथ ठाकुर। सारदा देवी आपकी माता थीं

ठाकुर-वंश पिराली ब्राह्मण समाजकी ही एक शाखा है। इस वंशको ठाकुर उपाधि अभी पांच ही छः पुश्तसे मिली है।

इस वंशके साथ बंगालके दूसरे ब्राह्मणोंके समाजका खान-पान बहुत पहले ही से नहीं है। इस वंशके इतिहाससे मालूम हुआ कि पहले इस वंशकी मर्यादा इतनी बढ़ी चढ़ी न थी। वह बहुत साधारण भी न थी। समाजमें इसके पतित समझे जानेके कारण इसमें क्रान्ति करने वाली शक्तियोंका उभ्युत्थान होना भी स्वाभाविक ही:था। ईश्वरकी इच्छा, क्रान्तिके भावोंके फैलाने के लिये इस वंशकी शक्तिको साधन भी यथेष्ट मिले और समाजसे दबकर मुरझानेके बदले देश और संसारमें उसने एक नई स्फूर्ति फैलाई। धर्म, दर्शन, विचार, स्वातन्त्र्य, साहित्य, संगीत, कला और प्रायः सभी विषयोंमें ठाकुर घरानेकी इस समय एक खास सम्मति रहती है। संसारमें उसकी सम्मति आदर-योग्य समझी जाती है। सामाजिक बाधाओंके कारण, विलायत-यात्रा, धर्म-संस्कार, साहित्य-संशोधन और सभ्यताके हर एक अंगपर अपनी कृतियोंके चिन्ह छोड़नेका इस वंशको एक शुभ अवसर मिला।

श्राद्धके समय इस घरानेमें दस पुरुषों तकके जो नाम आते थे वे ये हैं :—

"ओं पुरुषोत्तमाद् बलरामो बलरामाद्धरहरो हरिहराद्रा-मानन्दो रामानन्दान्महेशो महेशात पञ्चाननः पञ्चाननाज्जय रामो जय रामान्नीलमणि नीलमणे रामलोचनो रामलोचनाद्द्वारका-नाथो नमः पितृपुरुषेभ्यो नमः पितृपुरुषेभ्य ।"

"पुरुषोत्तम—बलराम—हरिहर—रामानन्द—महेश—पञ्चा-नन—जयराम—नीलमणि—रामलोचन—द्वारकानाथ—देवेन्द्र-नाथ—रवीन्द्रनाथ—रथीन्द्रनाथ।

ठाकुर-वंश भट्टनारायणका वंश है। भट्टनारायण उन पांच कान्यकुब्जोंमें हैं जिन्हें आदिशूरने कन्नौजसे अपने यहां रहनेके लिये बुलाया था और बङ्गालमें खासी सम्पति दे देकर उन्हें प्रतिष्ठित किया था। संस्कृतके वेणी-संहार नाटकके रचयिता भट्टनारायण यही थे। जिनका नाम पितृपुरुषोंकी वंश-सूत्रोंमें पहले आया है, वे पुरुषोत्तम मशोहर जिलेके दक्षिण डिहाके रहने वाले पिराली वंशके एक ब्राह्मणकी कन्यासे विवाह करके पिराली हो गये थे। ये मशोहरमें रहने भी लगे थे।

इसी वंशके पञ्चानन यशोहरसे गोविन्दपुर चले आये। यह मौजा हुगली नदीके तट पर बसा है। यहां नीच जातियां ज्यादा रहती थीं। ये उन्हें 'ठाकुर' कहकर पुकारती थीं। बङ्गालमें ब्राह्मणोंके लिये यह सम्बोधन आमफ़हम है। इस तरह, पञ्चाननके बादसे इस वंशकी यही "ठाकुर" उपाधि चली आ रही है।

गोविन्दपुरमें जब पञ्चानन पहले पहल गये और बसे, उस

समय भारतमें अंग्रेजोंके पैर जम ही रहे थे। वहांके अंग्रेजोंसे पञ्चाननकी जान पहचान हो गई। अंग्रेजोंने उनके लड़केको जिनका नाम जयराम था, २४ परगनेका अमीन मुकर्रर कर दिया। जयरामने कलकत्तेके पथरिया हट्टेमें एक मकान बनवाया और कुछ ज़मीन भी खरीदी! १७५२ ई० में उनका देहान्त हो गया। उनके चार पुत्र थे। उनमें उनके दो लड़कोंने, नीलमणि और दर्पनारायणने, कलकत्तेके पथरिया हट्टा और जोड़ासाकूमें दो मकान बनवाये। इस वंशकी सम्पत्तिका अधिक भाग रवीन्द्रनाथके पितामह द्वारकानाथने स्वयं उपार्जित किया था और उनके ऋणके कारण उसका अधिकांश चला भी गया।

इस वंशका धर्म पहले शुद्ध सनातन धर्म ही था। उस समय ब्राह्म-समाज बीजरूपमें भी न था। इसके प्रतिष्ठाता रवीन्द्रनाथके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ थे। इस समाजकी प्रतिष्ठा कई कारणों से की गयी थी। पहला कारण तो यही है कि ब्राह्मण-समाजमें इस वंशकी प्रतिष्ठा न थी। दूसरे इस वंशके लोगोंकी शिक्षा और संस्कृति बढ़ गई थी। भावोंमें उदारता आ गई थी। ये विलायत-यात्राके पक्षमें थे। द्वारकानाथ विलायत हो भी आये थे। इन कारणोंसे समाजकी दृष्टिमें इस वंशकी जो जगह रह गई थी, वह भी जाती रही। इस वंशको इसकी बिलकुल चिन्ता नहीं हुई। ज्ञान-विस्तारके साथ ही इसकी सुरुचि भी परिष्कृत होती गई। तुच्छ अभिमानकी जगह उन्नत आर्यसंस्कृतिका अभिमान पैदा हुआ। जाति और देशके प्रति प्रेम और प्रतिभाने

इस वंशको गौरवके शिखरपर स्थापित किया। रवीन्द्रनाथका रंग और रूप देखकर आर्यों के सच्चे रंग व रूपकी याद आ जाती है। समाज और देशके मुख्य मनुष्यों द्वारा बाधा प्राप्त होनेके कारण इस वंशके लोगोंको अपने विकासके पथपर अग्रसर होनेकी आत्म-प्रेरणा हुई। ये बढ़े भी और बहुत बढ़े। इनकी प्रतिभामें नई सृष्टि रचनेकी जो शक्ति थी उसने देश और साहित्यका बड़ा उपकार किया, दोनोंमें एक युगान्तर पैदा कर दिया। जिसमें सृष्टि करके हजारों मनुष्योंको उस मार्ग पर चलानेकी शक्ति है, जिसका ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभवपर टिका हुआ है, जिसकी बुद्धि अपने विचारोंसे अपनेको धोखा नहीं देती, वह हज़ार उपेक्षाओं और असंख्य बन्धनोंमें रहनेपर भी अपनी स्वाधीन गतिके लिये रास्ता निकाल लेता है। इनलोगोंने भी ऐसा ही किया। अपने लिये आर्यसंस्कृतिके अनुसार धर्म और समाजकी सुविधा भी करली। इनके यहां अभी उस दिनतक देवी देवतों की पूजा हुआ करती थी। इनलोगोंने ब्राह्म-समाजकी स्थापना की और उस वेदान्त वेद्य ब्रह्मकी उपासना करने लगे। रवीन्द्र-नाथके पिता, महर्षि देवेन्द्रनाथ तो पक्के ब्राह्मसमाजी थे, परन्तु इनकी माताके हृदयमें हिन्दूपनकी छाया, मूर्ति पूजनके संस्कार, मृत्युके अन्तिम समय तक मौजूद थे।

देशकी तात्कालिक परिस्थिति जैसी थी, ईसाई धर्म जिस वेगसे बङ्गालमें धावा मार रहा था, सनातन धर्मियोंकी संकी-र्णता जिस तरह क्षुद्रसे क्षुद्र होती जा रही थी, यश प्राप्तिकी

प्यास जिस तरह बंगालियोंको पश्चिमकी ओर बढ़ा रही थी, इन कारणोंसे उस समय एक ऐसे धर्मका उद्भव होना आवश्यक था जो बाहरी देशोंसे लौटे हुए हिन्दुओंको भारतीयताके घेरेमें रखकर उनमें पारस्पारिक ऐक्य और सहानुभूति बनाये रह सके—जाति-भिन्नतामें भी एकताके बन्धनोंको दृढ़ कर सके। दूसरी दृष्टिसे, जिस तरह पण्डितोंकी सांकीर्णता सक्रिय थी, उसी तरह देशमें उदारताकी एक प्रतिक्रियाका होना आवश्यक हो गया था, यह अवश्यम्भावी—था और प्राकृतिक भी था।

पहले पहल राजा राममोहनरायके मस्तिष्कमें ब्राह्मसमाज की स्थापनाके भाव पैदा हुए थे। परन्तु ब्राह्मसमाजको स्थायी रूप वे नहीं दे सके। इससे पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। इसे स्थायी रूप मिला, रवीन्द्रनाथके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथके द्वारा। जिस समय देवेन्द्रनाथके हृदयमें अद्वैत ब्रह्मकी उपासना की आशा दूसरों की दृष्टिसे बचकर पुष्ट हो रही थी, उस समय उनके यहां शालग्रामकी पूजा बड़े धूमधामसे की जाती थी। परन्तु, जिस बीजका अङ्कुर उग चुका था, उसका फलीभूत होना स्वाभाविक था। अस्तु १८३८ ई० में महर्षिने तत्वरञ्जनी नामको एक सभा की प्रतिष्ठा की। इसकी स्थापना उन्होंने अपने घरपर ही की थी। इसके दूसरे अधिवेशनके समय विद्यावागीश रामचन्द्रको उन्होंने बुलाया। विद्यावागीश महोदयने इस सभाका नाम तत्वरञ्जिनी बदलकर तत्वबोधिनी रक्खा

१८४२ ई० में यह सभा निर्जीव ब्राह्मसमाजके साथ मिला दी गई। इसी साल महर्षि देवेन्द्रनाथ भी ब्राह्मसमाजी हो गये इसमें नया जीवन डालने और कुछ दूसरे कारणसे देवेन्द्रनाथ महर्षि कहलाये। उनके सुपुत्रोंने इस कार्यमें उनकी सहायता की। किसी समय रवीन्द्रनाथने बड़ी योग्यता और तत्परताके साथ पिताके इस कार्यका संचालन किया था।

रवीन्द्रनाथका बालपन सुखकी कल्पनाओं और सरल केलियोंके भीतर संसारके प्रथम परिचयको प्राप्तकर मधुर और बड़ा ही सुहावना हो रहा था। रवीन्द्रनाथ उच्च वंशके लड़के थे। उन्हें कोई अभाव न था। परन्तु उन्हें बालपनमें दीनताको गोद पर सहानुभूतिकी प्रार्थना करते हुए देखकर हृदयको अपार सुखकी प्राप्ति होती है। उन्हें ऐसा ही साधारण जीवन बिताना पड़ा था।

रवीन्द्रनाथ पढ़नेके लिये ओरियण्टल सेमीनरीमें भर्ती किये गये। उस समय इनके स्कूल जाते हुए एक ऐसी ही घटना हुई! पहले इनके दो साथी उस स्कूलमें भर्ती किये गये। वे इनसे उम्रमें कुछ बड़े थे। उन्हें बग्घी पर चढ़कर स्कूल जाते हुए और स्कूलसे लौटकर बाहरके मनोरञ्जक दृश्योंकी वर्णना करते हुए सुनकर रवीन्द्रनाथको स्कूल जानेकी बड़ी लालसा हुई। परन्तु इनकी उम्र उस समय बहुत थोड़ी थी। लोगोंने समझाया कि इस समय तो स्कूल जानेके लिये मचल रहे हो, परन्तु दो-चार दिनके बाद फिर जी चुराओगे। यह भय बालक रवीन्द्रनाथको सत्याग्रहसे विचलित न कर सका। आंसुओंके बलपर बालक

की विजय हुई। दूसरे दिन रवीन्द्रनाथ ओरियन्टल सेमीनरीमें बच्चोंकी कक्षामें भर्ती कर दिये गये। यहां बच्चोंपर जैसा शासन था, इससे रवीन्द्रनाथको बहुत शीघ्र यहां की पढ़ाईसे जी छुड़ाना पड़ा।

ओरियण्टल सेमीनरीसे बालक रवीन्द्रनाथको नार्मल स्कूल में भर्ती कर दिया गया। उम्र इस समय भी इनकी बहुत थोड़ी ही थी। यहां दूसरी ही दिक्कतका सामना करना पड़ा। यहां बच्चोंसे अंग्रेजीमें गाना गवाया जाता था। अङ्गरेजी प्रियरियां और अंगरेजी गाने सिखलाये जाते थे। हिन्दुस्तानी बच्चोंके गलेमें मजकर एक अंगरेजी गानेकी ऐसी शक्ल बन गई थी कि उस पर इस समयके शब्द तत्ववेत्ताओंको पाठोद्धारके लिये विचार करना चाहिये। रवीन्द्रनाथको इस समय भी उस गानेकी एक लाइन न भूली।

"कलोकी पुलोकी सिंगल
मेलालिं मेलालिं मेलालिं।"

इसके उद्धारके लिये रवीन्द्रनाथको बड़ी मिहनत उठानी पड़ी। फिर भी "कलोकी" की सफल कल्पना नहीं कर सके। बाकी अंशका उन्होंने इस तरह उद्धार किया—"Full of gbe, Singing merrily Singing merrily Sining merrily."

नार्मल स्कूलमें विद्यार्थियोंके सहवासको रवीन्द्रबाबूने बहुत ही दूषित बतलाया है। जब लड़कोंके जलपानकी छुट्टी होती

थी, उस समय नौकरके साथ बालक रवीन्द्रनाथको एक कमरेमें बन्द रहना पड़ता था। इस तरह बालकोंके उत्पातसे वे आत्म-रक्षा करते थे। एक दिन वहां किसी शिक्षकने अपशब्द कह दिये। तबसे उनके प्रति बालक रवीन्द्रनाथकी अश्रद्धा हो गई। फिर बालकने उस शिक्षकके किसी प्रश्नका कभी उत्तर नहीं दिया।

रवीन्द्रनाथने सात ही वर्षकी उम्रमें एक कविता पयार छन्दमें लिखी थी। इसे पढ़कर इनके घरवालोंको बड़ी प्रस-न्नता हुई। यह कविता रवीन्द्रनाथने अपने भानज ज्योति स्वरूप से उत्साह पाकर लिखी थी। उसमें वे इनसे बड़े थे, अंग्रेजी स्कूलमें पढ़ते थे। इनके बड़े भाई स्वर्गीय द्विजेन्द्रनाथको यह कविता पढ़ कर बड़ा ही हर्ष हुआ। उन्होंने बहुतेरोंको कविता दिखाई, और, एक दिन नैशनल पेपरके एडीटर नवगोपाल बाबूके आने पर उन्हें भी यह कविता सुनाई गई। वर्तमान कालके समालोचकों और पत्रसम्पादकोंकी तरह अनुदार और जरा सी सम्मति देने वालोंकी उस समय भी कमी न थी। नवगोपाल बाबू भी अखिर सम्पादक थे, गंभीरता पूर्वक हंसे, दबे स्वरोंमें कहा—"हां, अच्छी तो है, जरा द्विरेफ खटकता है।" नवगो-गोपाल बाबू कविताके मर्मज्ञ थे या नहीं, यह तो हम नहीं, कह सकते, परन्तु इतना हमें मालूम है कि उनकी कविता-मर्मज्ञताके सम्बन्धमें उस समयके बालक रवीन्द्रनाथके जो भाव थे वे अब तक भी नहीं बदल सके, न अब तक वह द्विरेफ शब्द रवीन्द्र-नाथको खटका।
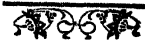
बचपनमें रवीन्द्रनाथ पर नौकरोंका शासन रहता था। इन्हींके बीचमें वे पल रहे थे। रवीन्द्रनाथके पिता उन दिनों पर्यटन कर रहे थे। अक्सर बाहर ही रहा करते थे। रवीन्द्र-नाथको माताकी गोद पर पहली सीढ़ीके पार करनेका सौभाग्य नहीं मिला। माता उस समय रोग-ग्रस्त रहती थीं। रवी-न्द्रनाथकी देख-रेख नौकरों द्वारा ही हुआ करती थी। बड़े घरोंके लड़के बालपनमें भोजन-वस्त्रका अभाव नहीं महसूस करते। यह बात रवीन्द्रनाथके लिये न थी।—भोजन और वस्त्र का सुख भोग उस समय इन्हें नहीं मिला। सुख उन्हें उनकी क्रीड़ाएं देती थीं। उन्हींकी छायामें वे प्रसन्न होते थे। दस वर्ष तक रवीन्द्रनाथको मोजा भी नहीं मिले। जाड़ेके दिनोंमें दो सादे कुर्ते पहन कर जाड़ा काटना पड़ता था। रवीन्द्रनाथने अपने बालपनको जिन शब्दोंमें याद किया है, उनसे वे हर एक पाठककी सहानुभूति आकर्षित कर लेते हैं। एक जगह उन्होंने लिखा है—"इस तरहके अभावोंसे मुझे कष्ट न था। परन्तु, जब हमारे यहांका दर्जी यनायतखां कुर्ते में जेब लगाना भी अनावश्यक समझता था तब दुःख अवश्य होता था।" एक जोड़ा स्लीपरोंसे बालकको जूतेका शौक पूरा कर लेना पड़ता था। इस तरहके स्लीपरोंसे रवीन्द्रनाथकी इतनी सहानुभूति थी कि जहां उनके पैर रहते थे वहां जूतोंकी पहुंच न होती थी।

नौकरोंके प्रभावका एक उदाहरण लीजिये। इनके यहां एक नौकर खुलना ज़िलेका रहता था। नाम श्याम था। था भी

श्याम ही। एक रोज बालक रवीन्द्रनाथको कमरेमें बैठाल कर चारों ओरसे उसने लकीर खींच दी और गम्भीर होकर कहा, इसके बाहर पैर बढ़ाया नहीं कि आफतका पहाड़ टूटा। सीता की कथा रवीन्द्रनाथ पढ़ चुके थे। वे नौकरकी बात अविश्वास न कर सके। वे चुपचाप वहीं बैठे रहे। इस तरह कई घण्टे उन्हें बैठ रहना पड़ा। झरोखेसे अपने घरके पक्के घाटपर लोगों की भीड़, बगीचेमें चिड़ियोंकी चहक, पूर्व ओर की चारदीवारीके पासका चीनावट—पड़ोसियोंका आना, नहाना, नहानेके प्रकार-भेद, ये सब दृश्य बालक रवीन्द्रनाथको उस कैदमें भी धैर्य और आनन्द देनेवाले ; उनके परम प्रिय सहचर थे। उनके बालपनका अधिकांश समय, प्रकृतिके दूसरे छोरकी मोहिनी सृष्टिके साथ उन्हें मित्रताके बन्धनमें डालकर न जाने किस अलक्षित प्रेरणासे उनके भविष्य जीवनके आवश्यक अङ्गका सुधार कर रहा था। घरको प्रकृतिके साथ रवीन्द्रनाथका एक बड़ा ही मधुर परिचय हो गया था। उनके किशोर समयके आते ही यह प्रकृति सुकुमार कविताके रूपमें प्रगट हुई।

प्रकृतिदर्शनकी कितनी ही कथाएं बालक रवीन्द्रनाथकी जीवनीमें मिलती है। विस्तार भयसे उनका उल्लेख हम न करेंगे। संक्षेपमें इतना कह देना बहुत होगा कि जीवनकी इस अवस्थाको देखकर कविके भविष्यजीवनका कुछ अनुमान हो जाता है। अस्तु।

नार्मल स्कूलके एक शिक्षक रवीन्द्रनाथको घर पर भी पढ़ाते

थे। ये नीलकमल घोषाल थे। स्कूलकी अपेक्षा घरपर रवीन्द्रनाथको अधिक पढ़ना पड़ता था। सुबहको लँगोट कसकर एक काने पहलवानसे ये जोर करते थे। कुछ ठण्ढे होकर, कुर्ता पहन, पदार्थ-विद्या, मेघनाद बध काव्य, ज्यामिति, गणित इतिहास, भूगोल आदि अनेक विषयोंका अभ्यास करना पड़ता था। फिर स्कूलसे लौटकर ड्राइङ्ग और जिमनास्टिक सीखते थे। रविवारको गाना सिखलाया जाता था। सीतानाथ दत्त महाशय मन्त्रोंके द्वारा कभी कभी पदार्थ-विज्ञानकी शिक्षा देते थे। केम्बल मेडिकलस्कूलके एक विद्यार्थीसे अस्थिविद्याकी शिक्षा मिलती थी। एक तारोंसे जोड़ा हुआ नरकङ्काल पाठागारमें लाकर खड़ा कर दिया गया था। उधर हेरम्ब तत्वरत्न मुकुन्द सच्चिदानन्दसे आरम्भ कर 'मग्धबोध' व्याकरण रटा रहे थे। बालक रवीन्द्रनाथको अस्थि-विद्याके हाड़ों और वोद्देवके सूत्रोंमें हाड़ ही अधिक सरस और मुलायम जान पड़ते थे। वंगभाषाकी शिक्षाके परिपुष्ट हो जाने पर इन्हें अङ्गरेजीकी शिक्षा दी जाने लगी।

पहले पहल इन्हें प्यारीलालकी लिखी पहली और दूसरी पुस्तक पढ़ाई गई फिर एक पुस्तक आक्सफोर्ड रीडिङ्गको। अङ्गरेजीकी शिक्षामें रवीन्द्रनाथका जी न लगता था। पढ़ते-पढ़ते शाम हो जाती थी। मन अन्तःपुरकी ओर भागा करता था। दिन भरकी मिहनतके बाद थका हुआ मन क्रीड़ाकी गोद छोड़ कर विदेशी भाषाके निर्दय बोझके नीचे दबा रहना कैसे पसन्द

करता ? रवीन्द्रनाथको इस समय भी दमनीय दशाकी स्मृतिमें लिखना पड़ा है—"उस अंग्रेजो पुस्तककी जिल्द काली भाषा क्लिष्ट, विषयोंकी विद्यार्थियोंसे जरा भी सहानुभूति नहीं, बच्चों पर उस समय माता सरस्वतीकी कुछ भी दया नहीं देख पड़ी। प्रत्येक पाठ्य-विषयकी ड्योढ़ीपर सिलेबुलोंके द्वारा अलग किया हुआ उच्चारण, और ऐकसेण्टोंको देखिये तो आप समझेंगे कि किसी की जान लेनेके लिये बन्दूक पर संगीन चढ़ाई गई है।" अंग्रेजीकी पढ़ाईसे रवीन्द्रनाथकी उदासीनता देखकर मास्टर सुबोसचन्द्र इन्हें बहुत धिक्कारते थे। इनके सामने एक दूसरे छात्रकी प्रशंसा करते थे। परन्तु इस उपमान और उपमेय की छुटाई-बड़ाई यानी इस समालोचनाका प्रभाव रवीन्द्रनाथ पर बहुत कम पड़ता था। कभी कभी इन्हें लज्जा तो आती थी, परन्तु उस काली पुस्तकके अंधेरेमें पैठनेका दुस्साहस भी एकाएक न कर सकते थे। उस समय शांतिका एक मात्र सहारा प्रकृतिकी कृपा ही होती थी। प्रायः देखा जाता है, क्लिष्ट विषयोंके दुरूह दुर्गके अन्दर पैठनेके लिये हाथ-पैर मारकर थके हुए बच्चेके प्रति दया करके प्रकृति देवी उसे निद्राके आराम-मन्दिरमें ले जाती है। रवीन्द्रनाथकी भी यही दशा होती थी। पुतलियां नींदकी सुखद मदिरा पीकर पलकोंकी गोदमें शिथिल हो कर धीरे-धीरे मुद जाती थीं। इतने पर भी इन्हें विदेशी शिक्षाकी निर्दय चेष्टाओंसे मुक्ति न मिलती थी। आंखोंमें पानीके छींटे लगाये जाते थे। इस दुर्दशासे मुक्तिके दाता

इनके बड़े भाई थे। अपने छोटे भाईकी शिक्षा प्रगतिको प्रत्यक्ष करते ही उन्हें दया आ जाती थी। वे मास्टरसे कहकर इन्हें छुट्टी दिला देते थे। आश्चर्य तो यह है कि वहांसे चलकर बिस्तरे पर लेटनेके साथ ही रवीन्द्रनाथकी नींद भी गायब हो जाती थी।

नार्मल स्कूल छोड़कर ये बंगाल एकाडमी नामके एक फिरंगी स्कूलमें भर्ती हुए। वहां भी अंग्रेजीसे इन्हें विशेष अनुराग न था। वहां कोई इनकी निगरानी करने वाला भी न था। वह स्कूल छोटा था। उसकी आमदनी कम थी। रवीन्द्रनाथने लिखा है—"स्कूलके अध्यक्ष हमारे एक गुण पर मुग्ध थे। हम हर महीना, समय पर, स्कूलकी फीस दे दिया करते थे। यही कारण है कि लैटिनका व्याकरण हमारे लिये दुरूह नहीं हो सका। पाठ-चर्चाके अक्षम्य अपराधसे भी पीठ अक्षत बनी रहती थी।"

बचपनमें कविता लिखनेकी इन्होंने एक कापी आसमानी रङ्गके कागज़ोंकी बनाई थी। उसके कुछ पद्य निकल चुके हैं। होनहार तो ये पहले ही से थे। इनकी पहली कविताओंमें प्रतिभा यथेष्ठ मात्रामें मिलती है। लेकिन, निरे बचपनसे कविता करते रहने पर भी, इन्हें, कुछ अंगरेज,:कौले और ब्रौनिंगकी तरह, बचपनका प्रतिभाशाली कवि नहीं मानते। कुछ भी हो, हमें रवीन्द्रनाथके उस समयके पद्योंमें भी बड़ी ही सरस सृष्टि मिलती है

पश्चिमी-संसार रवीन्द्रनाथको नदीका कवि (Riverpoet)
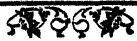
मानता है। हैं भी रवीन्द्रनाथ नदीके कवि। उनकी कविताओंमें जगह-जगह, अनेक वार, नदीका सौन्दर्य, प्रवाह और तरंगोंकी मनोहरता दिखलाई गई है। सफल भी रवीन्द्रनाथ इन कविताओं में बहुत हुए हैं। नदीकी कविता उनके लिये स्वाभाविक है। बंगाल नदियोंके लिये प्रसिद्ध है। उधर रवीन्द्रनाथके जीवनका बहुतसा समय, नदियोंके किनारे, उनके प्राकृतिक सौन्दर्यकी उदार गोदमें बीता है। सौन्दर्य-प्रियता रवीन्द्रनाथकी प्रकृतिमें उनके पिताकी प्रकृतिसे दूसरी तरहकी है। उनके पिता हिमालयका शिखर-संकुल प्रदेश पसन्द करते थे, परन्तु रवीन्द्रनाथको, समतल भूमिपर, दूर तक फैली हुई, हरी भरी, हंसती हुई, चञ्चल तथा विराट प्रकृति अधिक प्यारी है। जिन्हें रवीन्द्रनाथ आदर्श मानते हैं, वे कालिदास भी पर्वत-प्रिय कवि थे। रवीन्द्रनाथकी मौलिकताकी यहां भी स्वतन्त्र चाल है।

पन्द्रहवें सालसे पहले ही रवीन्द्रनाथ कुछ कविताएं कर चुके थे। उनकी पहलेकी कविताएं और समालोचना ज्ञानाङ्कुर में निकलती थीं। उन दिनों भारतीमें भी ये लिखा करते थे। पहली और सबसे बड़ी इनकी कवि-कथा नामकी कविता 'भारती'में निकली थी। इस समय यह पुस्तिकाकार बिकती है। कहते हैं कि जीवनकी इस अवस्थामें अङ्गरेज कवि शेली इन्हें बहुत प्यारा था। चूंकि यह उनकी कविताकी पहली ज्योति थी—यौवन-कालकी पहली रागिनी थी, इसलिये भावुकता और सर्वलोक प्रियता इसमें बहुत है। जीवनकी अधखुली अवस्थामें

स्वभावतः संसारकी ओर बढ़कर, अपनी धारामें उसे बहा ले चलनेकी भावना प्रतिभाशाली हर एक कविमें होती है। यही हाल उस समयमे रवीन्द्रनाथका भी था। उनकी निर्जन प्रियता भी हद दर्जेकी थी। अपने विकासकी उलझनोंको एकान्तमें बैठे हुए दो-दो और तीन-तीन घण्टे तक वे सुलझाते रहते थे। हृदयकी आंख इस तरह खुल रही थी। कुछ दिनों बाद वन-फूलके नामसे इनकी एक दूसरी पुस्तक निकली। यह उनकी ग्यारहसे पन्द्रह साल तक की कविताओंका संग्रह था। उन कविताओंसे कुछ ही कविताएं इस समयके संग्रहमें रह गई हैं। बीसवें सालके अन्दर ही अन्दर गाथा नामकी एक पुस्तक और उन्होंने लिखी। यह कविता-कहानी है। रवीन्द्रनाथके अंगरेज समालोचक लिखते हैं कि इसे पढ़कर जान पड़ता है कि रवीन्द्रनाथ पर इस समय स्काट प्रभाव था। बीसवें सालके अन्दर ही भानु-सिंह-संगीतोंके बीस गाने तक उन्होंने लिख डाले थे। कहते हैं कि इस समयसे रवीन्द्रनाथका यथार्थ साहित्यिक जीवन शुरू होता है।

लेकिन, इस बीसवें सालसे पहले, जब वे सोलह सालके थे, २० वीं सितम्बर १८७७ को, पहली बार वे विलायतके लिये रवाना हुए थे, और साल भर बाद ४ थे नवम्बर १८७८ को बम्बईमें वापस आये। भारतीमें इनकी योरप-पर्यटन पर लिखी गई कुछ चिट्ठियां निकल चुकी हैं जिनसे सूचित हो जाता है कि योरप उस समय इनके लिये सन्तोषप्रद नहीं हो सका। अरु-

चिकर चाहे जितना रहा हो, परन्तु सर्वांशतः योरप इनके लिये निष्फल नहीं हुआ। सबसे बड़ा लाभ तो इन्हें यही हो गया कि जिस महत्ताको रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द और संगीतों द्वारा ये सावभौमिक करनेके लिये पैदा हुए थे, उसके समुद्बोधनके लिये इन्हें वहां यथेष्ट साधन मिल गये। पहली बात तो यह कि इन्होंने पृथ्वीका विशाल भाग उचित उम्रमें प्रत्यक्ष देख लिया। दूसरी बात, संसारकी बहुत सी सभ्य जातियोंकी शिक्षा और उनके आचार-व्यवहारोंकी परीक्षा हो गई। तीसरे, प्राकृतिक दृश्योंकी विचित्रता और हर प्रकृतिके मनुष्योंका बाहरी प्रकृतिके साथ आभ्यन्तरिक मेल, उसका वैज्ञानिक कारण, वहां जाने पर समझमें आ गया। बर्फका गिरना और दूर तक फैली हुई बर्फीली भूमिकी शोभा भी वहां दृष्टिगोचर हो गई; अस्तु विलायत पर लिखे गये रवीन्द्रनाथके पत्र बड़े सरस हैं। यों भी रवीन्द्रनाथ बङ्गलाके पहले दर्जेके पत्र लेखक हैं। कभी कभी बंगलाके पत्रोंमें इनकी चिट्ठियां छपा करती हैं। विलायतसे लौटनेके कुछ ही दिनोंके बाद 'मेघनाद वध' काव्य पर इनकी एक प्रतिकूल समालोचना निकली। इस पैनी समालोचना पर अब ये हंसते हैं। कहते हैं, वह शक्तिकी पहली अवस्था थी जब मेघनाद वध काव्य पर लिखी गई मेरी समालोचना प्रकाशित हुई थी। उस समय मुझे यह ज्ञान न था कि मैं बंगालके अमर कविकी प्रतिकूल समालोचना लिख रहा हूं।

इन्हीं दिनों रवीन्द्रनाथका 'करुणा' उपन्यास निकला। इस

समय अक्सर कवि करुणाके पथिक हुआ करते हैं। संसारके दुःख और दाहके चित्रोंसे उनकी पूर्ण सहानुभूति रहा करती है। 'भग्न हृदय' नामक इस समयकी लिखी हुई एक दूसरी पुस्तकमें ऐसे ही भावोंका समावेश हुआ है। यह पद्य-बद्ध नाटक है। यह रवीन्द्रनाथकी अठारह सालकी उम्रमें लिखा गया था। सोलहवें सालसे तेईसवें साल तककी रवीन्द्र-नाथकी स्थिति बड़ी चञ्चल थी। कोई शृङ्खला तब तक न हो पाई थी। उद्देश्य सदा ही परिवर्तित होते रहते थे।

१८८१ से १८८७ तकका समय रवीन्द्रनाथके लिये सच्चा साहित्यक काल है। इस समय उनकी प्रतिभा पूर्ण रूपसे विक-सित हो गई थी। इसी समय उनकी 'सन्ध्या-संगीत' नामक कविता पुस्तक निकली थी। इसके निकलनेके साथ ही, बंगाल भरमें, रवीन्द्रनाथकी प्रतिभा चमक उठी। उस समयके बड़े बड़े विद्वानों तकने रवीन्द्रनाथका लोहा मान लिया। कविता की दृष्टिसे इसकी सवाइकी कविताएं बड़े महत्वकी हैं। उनमें एक विचित्र ढंगकी नवीनता आ गई है जो उस समयके कवियों और समालोचकोंके लिये बिलकुल एक नई चीज थी। 'बाल्मीकि-प्रतिभा' और 'काल-मृगया' दोनों ही संगीत-काव्य हैं। रवीन्द्र-नाथकी नस-नसमें संगीतकी धारा बह रही है। इनके अंग-रेज समालोचक संगीतकी दृष्टिसे इन्हें बहुत ऊंचा स्थान देते हैं। उस स्थानके लिये ये योग्य भी हैं। भावोंके अतिरिक्त इनके शब्दोंमें बड़ा ज़ोर है और छन्दोंका बहाव जैसा वे चाहें

बिलकुल वैसा ही। भाषा, भाव और, छन्दों पर इतना बड़ा अधिकार, इन पंक्तियोंके लेखकको, और कहीं नहीं मिला। उस दिन रवीन्द्रनाथ पर दी गई बंगलाके प्रसिद्ध औपन्यासिक शरतबाबूकी यह राय कि "मेरा विश्वास है, भारतमें इतना बड़ा कवि नहीं पैदा हुआ" बहुत अंशोंमें सच है। मुझे भी विश्वास है कि तुलसीको छोड़कर मुसलमानी शासनकालसे लेकर आज तक इतना बड़ा कवि भारतमें नहीं पैदा हुआ।

'संध्या संगीत' अलक्ष्य भावसे 'प्रभात-संगीत' की ओर इशारा करती है, जैसे कुछ दिनोंमें इस नामकी पुस्तक भी निकलने वाली हो। ऐसा ही हुआ। 'संध्या-संगीत' के प्रकाशित हो जाने पर, कुछ दिनोंमें 'प्रभात-संगीत' भी निकला। इसने बंगला-साहित्यमें धूम मचा दी। इसकी भाषा, इसके भाव, इसके छन्द, सब विचित्र ढंगके; एक बिलकुल अपूठापन लिये हुए। इस तरहकी कविता बंगालियोंने पहले ही पहल देखी थी, और निस्सन्देह इस संग्रहकी कविताएं कवित्वकी हद तक पहुंची हुई हैं। बहुतोंको यहां तक भी विश्वास है कि रवीन्द्रनाथकी कविताओंमें 'प्रभात-संगीत' के पद्य सर्वश्रेष्ठ हैं, कमसे कम ओज और छन्दोंके बहावके विचारसे तो अवश्य ही श्रेष्ठ हैं। फिर इनका विविध-प्रसंग निकला। इसकी भाषा बिलकुल नये ढंगकी है। अपने पुराने उपन्यासों (Novels) में रवीन्द्रनाथ जिसे आदरकी दृष्टिसे देखते हैं, वह 'बहू ठाकुरानीर हाट' भी इसी समय निकला था।

रवीन्द्रनाथके 'प्रभात-संगीत' की कविताएं आगे दी जाती हैं। उनसे मालूम हो जाता है कि रवीन्द्रनाथके हृदयमें किस तरहकी उथल-पुथल मची हुई थी? संसारसे मिलनेके लिये वे किस तरह व्याकुल हो रहे थे। हृदयका बन्द द्वार कविताके आते ही खुल गया और प्रेमकी जो धारा :बही, उन्हें उनकी कविताओंके साथ, संसार भरमें बहाती फिरी।

१६८३ में, कुछ समय तक वे करवार—पश्चिमी उपकूलमें रहे! यहां वे प्रसन्न रहते थे। यहांकी प्रकृति—उसकी विशालता—दूरतक फली, आकाशसे मिलती हुई, उन्हे बहुत पसन्द आई। इसी साल, दिसम्बरमें, २२ वर्षकी उम्रमें, उनका विवाह हो गया।

'प्रकृतिर परिशोध' लिखनेके बाद कलकत्ता लौटकर उन्होंने 'छवि ओ गान' लिखा। कलकत्ता, जोड़ासांखों-भवनसे वे नजदीक की कुटियोंमें रहनेवाले निर्धन गृहस्थोंका जीवन, दैनिक स्थिति, एकान्तमें चुपचाप बैठे हुए देखा करते थे। सहानुभूति शिल कविके हृदयमें उसका प्रभाव पड़े बिना न रहता था। इस-पर उन्होंने दु:खान्त एक नाटक लिखा—'नलिनी' अब यह पुस्तक नहीं छपती। इससे बढ़कर उनका दूसरा दु:खान्त नाटक 'मायार खेला' निकला।

सरवारसे लौटनेके पश्चात् रवीन्द्रनाथकी मानसिक स्थिति बदल गई थी। अब पहलेको तरह निराशा न थी, आदर्श विहोन जीवनको साहित्यका मजबूत आधार मिल गया था। प्रभात
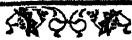
संगीतके निकलनेके बादसे जीवन पूर्ण और हृदय दृढ़ हो गया था। साहित्य-लक्ष्य पर स्थित हो जानेके कारण, इधर वे लगातार लेखनी-संचालन करते गये। 'आलोचना'में उनके कई प्रबन्ध निकले। समालोचक, रवीन्द्रनाथ प्रथम श्रेणी के हैं। शब्दोंको सामने और सत्यको लापता करनेवाले समालोचकोंको तरह ये नहीं हैं। इनकी समालोचना चुभती हुई, यथार्थ हो सत्यको भाव और भाषाके भूषणोंके साथ रखनेवाली हुआ करती है। इसी समय, 'राजर्षि'नामक एक उपन्यास इनका लिखा हुआ निकला, पीछेसे यह नाटकमें, 'विसर्जन'के नामसे बदल दिया गया। यह उच्च कोटिका नाटक माना जाता है। इसके बाद, 'समालोना', उनके प्रबन्धोका दूसरा खण्ड प्रकाशित हुआ। इन दिनों बंगालमें बंकिमचन्द्रकी तूती बोलती थी। बड़े बड़े साहित्यक उनकी धाक मानते थे। उनके उपन्यासोंका खूब प्रचार बढ़ रहा था। बंकिमचन्द्रको प्रतिभाकी ओर रवीन्द्रनाथ भी आकृष्ट हुए। दोनोंमें मित्रता हो गई। लेकिन एक दूसरेके व्यक्तित्वको दबा नहीं सका। कुछ ही दिनों बाद मित्रताका परिणाम घोर प्रतिवाद हो गया। रवीन्द्रनाथके 'हिन्दू-विवाह' पर दी गई वक्तृताने दोनोंमें विवाद ला खड़ा कर दिया। जिस पर रवीन्द्रनाथके प्रयोग ज्यादा जोरदार जान पड़ते हैं, समयके ख़यालसे ; आदर्श अवश्य हो बङ्किमचन्द्रका बड़ा था। यह १८-८७ का विवाद बड़े ऊंचे दर्जेका है। इसके अतिरिक्त १८८८ में कई आर कविताएं लिखकर रवीन्द्रनाथने बालिका-विवाहको खबर ली है।

यौवनकी पूरी हद तक पहुंचनेके पहले ही रवीन्द्रनाथका 'कड़ी ओ कोमल' पुस्तिकाकार निकला। उनके छन्द और संगीत के सम्बन्ध पर विचार करनेवाले पश्चिमी समालोचकोंकी समझ में नहीं आया कि रवीन्द्रनाथ पर वास्तवमें संगीतका प्रभाव अधिक है या छन्दोंका। दोनों इस खूबोसे परिस्फुर कर दिये जाते हैं कि समालोचकोंकी बुद्धि काम नहीं देती—वे जब जिसे देखते हैं तब उसे ही रवीन्द्रनाथकी श्रेष्ठ कारीगरी समझ लेते हैं। हमारे विचारसे रवीन्द्रनाथ दोनोंके सिद्ध कवि हैं। संगीतपर उनका जितना जबरदस्त अधिकार है उतना ही अधिकार छन्दों पर है।

१८८७ से १८९५ तक रवीन्द्रनाथका साहित्यिक कार्य यौवनकी विकसित अवस्थाका कार्य है। इस समय उन्हें कोई अशांति नहीं, घात-प्रति घातोंसे चित्तको क्षोभ नहीं होता, सहनशीलता काफी आ गई है और सौन्दर्यको पराकाष्ठा तक पहुंचानेकी कुशलता भी हासिल हो गई है। भाषाके पंख बढ़ गये हैं, भावना असीम-स्वर्गकी ओर इच्छानुसार स्वच्छन्द भावसे उड़ सकती है।

१८८७ में रवीन्द्रनाथ गाजीपुर गये। कल्पनाकी मृदुल गोदका सुकुमार युवक-कवि, हरे भरे दृश्योंसे घिरा हुआ, अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये दत्त चित्त हो रहा है। 'मानसी' को अधिकांश पद्य यहीं लिखे गये थे। मानसीमें रवीन्द्रनाथ कविताकी नन्दन-भूमिमें हैं—उसके एक मात्र प्रियतम कवि।

मानसीमें, जहां, 'भैरवी' जैसी भावात्मक उत्कृष्ट कविताएं हैं, वहां, 'सूरदासेर प्रार्थना' और 'गुरु गोविन्द' जैसी ऐतिहासिक, शांति-रससे भरे हुए, उच्चकोटिके शिक्षाप्रद पद्य भी हैं। 'वङ्ग-वीर'की तरह हास्य-रसकी कविताएं भी कई हैं। 'मानसी' पाठकोंकी मानसी ही है।

मानसीके बाद 'राजा ओ रानी' निकला। यह नाटक रवीन्द्रनाथके उच्चकोटिके नाटकोंमें है।

गाज़ीपुर छोड़नेके बाद रवीन्द्रनाथकी इच्छा हुई कि ग्रैण्ड-ट्रङ्क रोडसे, बैलगाड़ी पर सवार हो, पेशावरसे बंगाल तक का भ्रमण करें। लेकिन उनकी इच्छा पूरी नहीं हो सकी। उनके पिता, महर्षि देवेन्द्रनाथने उन्हें आज्ञा दी, "कुछ काम भी करो"! शिलाइदामें जमींदारीका काम था। पहले तो कामके नामसे रवीन्द्रनाथ कुछ डरे परन्तु पीछेसे सम्मति दे दी। जमींदारी संभालनेसे पहले दोबारा कुछ कालके लिये वे विलायत हो आये। अबके योरप भरमें पर्यटन किया और योरोपियन और जर्मनी संगीत सीखकर लौटे। उनकी यात्राका विवरण योरोपियन यात्री की डायरीके नामसे निकलचुका है।

लौटकर सिलाइदामें जमींदारी सँभालने लगे। इस समय रवीन्द्रनाथकी उम्र तीस सालकी थी। तमाम सभ्य संसारके लोगोंसे मिलकर भारतके सम्बन्धमें उन्होंने अपना स्वतन्त्र विचार निश्चय कर लिया था। वे समझ गये थे कि देशको शिक्षित करनेके लिये किस उपायका अवलम्ब उचित होगा। वर्तमान

शिक्षा देशको ज्ञानके आधार पर स्थित नहीं रख सकती। वह शक्ति इसमें नहीं। यह शिक्षा तो नौकरोंकी ही संख्या बढ़ा सकेगी। इस समयके विचार पूर्ण लेखोंके सम्बन्धमें लिखा है, जितने वर्तमान आन्दोलन हो रहे हैं, इनमें देशको उन्नतिशील करनेके अनेक आन्दोलनों पर पहले ही रवीन्द्रनाथ लिख चुके हैं, परन्तु आज उनसे वे अलग कर दिये जाते हैं। इन दिनों जातीय शिक्षाको जो महत्व दिया जा रहा है और जिसके लिये कितने ही राष्ट्रीय स्कूल खुल रहे हैं, इस प्रसंग पर बहुत पहले ही रवीन्द्रनाथ लिख चुके हैं। दुरदर्शिता रवीन्द्रनाथमें हद दर्जेको पहुंची हुई है। उनकी प्रखर दृष्टि जिस तरह सौंदर्यकी कुल बातोंका आविष्कार कर लेती है, उसी तरह दूरस्थित भविष्यके सूक्ष्मातिसूक्ष्म विषयोंको भी वह प्रत्यक्ष कर लेती है। रवीन्द्रनाथ केवल कवि ही नहीं, वे एक ऊंचे दर्जेके दार्शनिक भी हैं। यह रवीन्द्रनाथका साधना-समय था। इस समयके लिखे साधनाके अंगरेजी-व्याख्यानोंमें रवीन्द्रनाथकी दूरदर्शिताके अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। 'भारती'में इन व्याख्यानोंका अनुवाद लगातार निकलता और 'भारती'से अन्य पत्रिकाओंमें भी उद्धृत हुआ करता था। इस समय रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा सर्वतोमुखी हो रही थी। वे कविता तो करते ही थे, राजनीतिक और दार्शनिक भावनाओंके भी केन्द्र हो रहे थे।

जमींदारीका काम करते समय प्राकृतिक आनन्द रवीन्द्रनाथ को खूब मिलता था। इनकी जमींदारी एक जगह पर नहीं है।

रवीन्द्रनाथने अपने एक प्रबन्धमें, हाल ही में लिखा है, उनकी जमींदारी तीन जिलोंमें है। हिस्सेमें बंटी रहनेके कारण वोट (छप्पर वाली नाव) पर सवार होकर प्रकृति मनोहर दृश्योंका अन्तरङ्ग आनन्द प्राप्त करनेका इन्हें खासा सुयोग मिल गया। अधिकांश समय पद्माके विशाल वक्षस्थल पर व्यतीत होता था। नदी पर रवीन्द्रनाथकी कविताएं भी बहुत सी हैं और सब एकसे एक बढ़कर।

जमींदारीका काम लेकर सर्वसाधारणसे मिलनेका मौका भी रवीन्द्रनाथको मिला। वे पहले भी मनुष्य-प्रकृतिका निरीक्षन किया करते थे। अपने जोड़ासांखो भवनसे लोगोंको अनेक प्रकारसे नहाते हुए देखकर उन्हें बड़ा आनन्द होता था। इस विषय पर वह स्वयं लिख चुके हैं। उसी मकानके इधर-उधर झोपड़ोंके रहनेवाले निर्धन गृहस्थोंका व्यवहार, उनका परस्परिक आदान-प्रदान, उनकी दीनचर्या आदि देखकर उनके जीवन पर चुपचाप एकान्तमें रवीन्द्रनाथ विचार किया करते थे। परन्तु यहां उन्हें व्यक्तिगत रूपसे गरीब किसानोंके साथ व्यवहार करना पड़ा। इससे जीवनकी भीतरी अवस्था उसके सुख और दुःखके चित्र वे अच्छी तरह देख सके। साहित्यका एक अंग और जोरदार हो गया।

जमींदारीके कार्यमें रवीन्द्रनाथने अच्छी योग्यता दिखाई। कार्योंमें चारुता आ गई और जमींदारी पहलेसे सुधर गई। रवीन्द्रनाथने सिद्ध कर दिया कि प्रबन्ध कार्योंमें भी वे दक्ष हैं।

उन्होंने कृषिकी उन्नति की। कितने ही उपाय पैदावार बढ़ानेके निकाले। लोगोंको उनसे असन्तोष हुआ।

इस समय रवीन्द्रनाथ सुखी थे। उनकी दिन-चर्या भी अच्छी थी। उनके लेखोंमें सूचित है, पद्माकी गोद उन्हें बहुत पसन्द आई। छिन्न पत्रके नामसे उनकी कुछ गद्य-पंक्तियां और चित्रा इसी समय लिखी गई थी। चित्राका स्थान रवीन्द्रनाथकी कविताओंमें बहुत ऊंचा है। लेकिन क्रमशः उनकी कविता उन्नति करती गई है, इसलिये कहना पड़ता है कि बाद की कविताएं और अच्छी हैं। इस समय ६५ वर्षकी उम्रमें रवीन्द्रनाथ जो कविताएं लिखते हैं, हमारी समझमें उनका स्थान और ऊंचा है। सौन्दर्यकी इतनी मनोहर सृष्टि बहुत कम मिला करती है।

इन्हीं दिनों चित्राङ्गदा-नाटक निकला। रवीन्द्रनाथके नाटकोंमें चित्राङ्गदाके जोड़का दूसरा नाटक नहीं। यह सौन्दर्यके विचारसे कहा जा रहा है। चित्रांगदापर प्रतिकूल समालोचना बहुत हो चुकी है। बंगालके प्रसिद्ध नाटककार डी० एल० राय महाशयकी एक तीव्र समालोचना इसके विरुद्ध निकल चुकी है। उन्होंने आदर्शका पक्ष लिया था। चित्रांगदाके सौन्दर्यको आदर्श भ्रष्ट करने वाला करार देते हुए उन्होंने समालोचना समाप्त की है। परन्तु रवीन्द्रनाथको कवित्वशक्तिकी उन्होंने मुक्त हस्त होकर प्रशंसा की है। यह सच है कि चित्रांगदा पौराणिक आख्यानके आधार पर लिखी गई है, इसलिये पौराणिक भावोंकी रक्षा होनी चाहिये थी, अर्जुन और चित्रांगदाके विषय

वासनाकी ओर जितना ध्यान रवीन्द्रनाथने दिया है, उतना उनकी शुद्धि और सन्तोष पर नहीं दिया। डी० एल० रायका यह विवाद आदर्शकी दृष्टिसे बुरा न था। परन्तु कुछ भी हो, कवि स्वतंत्र है। उसपर ये दोष नहीं मढ़े जा सकते। दमयन्ती जैसी सतीके सम्बन्धपर लिखते हुए जैसा नग्न चित्र श्रीहर्षने खींचा है, वह उनके नैषधमें प्रत्यक्ष कीजिये।

कुछ लोग चित्रांगदाको नाटक न कह कर उत्कृष्ट कविता कहते हैं। रवीन्द्रनाथके अंगरेज समालोचक तो चित्रांगदाके अङ्गरेजी अनुवाद् चित्रा पर मुग्ध हैं। वे नाटकोंमें 'विसर्जन' को रवीन्द्रनाथका श्रेष्ठ नाटक मानते हैं। साथ ही उनका कहना है कि विसर्जन बङ्गला-साहित्यका सर्व श्रेष्ठ नाटक है। इसी समय 'सोनार तरी' निकली। इसकी अधिकांश कविताएं छायावाद पर हैं। परन्तु हैं बड़ी सुन्दर। यह रवीन्द्रनाथकी नवीनता लेकर आई। दूसरी कविताओंसे इसकी प्रकाशन-धारा बिलकुल नये ढंगकी है। कुछ दिनों बाद 'चित्रा' निकली। जीवनके प्रथमार्द्ध कालमें इससे अधिक मोहिनी सृष्टि रवीन्द्रनाथकी दूसरी नहीं। सौन्दर्य इसमें हद् तक पहुंच गया है। कहते हैं, इनकी 'उर्वशी' कविता संसार भरकी एक श्रेष्ठ कविता है! उर्वशी आगे, उद्धरणमें, दी जाती है।

१८९५ में साधना समाप्त हो गई। इसी साल 'चैताली' के अधिकांश पद्य निकले और १८९६ में कविताओंका पहला

संग्रह प्रकाशित हुआ। साधनाके निकल जानेके कुछ ही समय बाद 'चौताली' छप कर तैयार हुई। 'चौताली' के नामकरणमें भी कविता है। एक तरहके धान चैतमें होते हैं। उसीके नाम पर चैताली नाम रक्खा गया है। चौताली यानी रवीन्द्र-नाथ चेतके अन्तिम दाने चुन रहे हैं। १८८७ से १९०० के अन्दर रवीन्द्रनाथकी चार और प्रसिद्ध पुस्तकें निकलीं—कल्पना कथा, काहिनी और क्षणिका।

१९०१ में मृत वंगदर्शनमें फिरसे जान आई—रवीन्द्रनाथ उसके सम्पादक हुए।

इसी साल बोलपुरके पास वाले इनके आश्रमकी नींव पड़ी। रवीन्द्रनाथके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथके यहां, ऊंची और खुली भूमि पर, बड़े बड़े पेड़ देख कर साधना करनेकी इच्छा हुई थी। अब शांति निकेतनके नामसे यह संसारमें प्रसिद्ध है। इस समय ज्यादातर रवीन्द्रनाथ यहीं रहा करते हैं। शांति-निके-तन भारतीय ढंगका विश्व-विद्यालय हो, यह रवीन्द्रनाथकी आन्तरिक इच्छा है। भविष्यके विश्वविद्यालयको वे बतौर एक छोटेसे स्कूलके चलाने लगे। कलकत्ता विश्वविद्यालयकी शिक्षासे उन्हें बड़ी घृणा है। वे इसकी बुनियाद तक खोद कर हटा देनेके लिये तैयार हैं। भारतीय ढँगसे बालकोंको शांति-निकेतनमें आदर्श शिक्षा मिलती है।

१९०१ से १९०७ तक रवीन्द्रनाथने उपन्यास लिखनेमें बड़ा परिश्रम किया। उनका गोरा उपन्यास इसी समय निकला

था। हृदयमें उत्साह भी उमड़ रहा था और वे सदा कर्म-तत्पर भी रहा करते थे। परन्तु एकाएक उनका सारा हौसला पस्त हो गया। जीवनकी धारा ही बदल गई। १९०२ में उनकी स्त्रीका देहान्त हो गया। इस समय रवीन्द्रनाथका धैर्य देखने लायक था। हृदय दो टूक हो गया था, परन्तु शान्त गंभीरताके सिवा, प्रसन्न मुख पर,दुःखकी छाया भी नहीं पड़ी। गंभीरताकी स्थितिमें एकान्त प्रियता स्वभावतः बढ़ जाती है। अतः रवीन्द्रनाथ कुछ दिनोंके लिये सांसारिक कुल सम्बन्ध तोड़कर अलमोड़ा चले गये। उनका छोटा लड़का माताके बिना एक क्षण भी न रहता था। रवीन्द्रनाथ बच्चेके लिये पिता व माता दोनों ही थे। 'कथा' की कुल कहानियां इस बच्चेके दिल-बहलावके लिये ही लिखी गई थीं। इसी साल उन्होंने स्मरण लिखा—'स्मरण' उनकी पत्नीकी स्मृति पर लिखा गया था। इसके कुल पद्य मर्मस्पर्शी हैं। सौन्दर्यकी हद तक पहुंचना तो रवीन्द्रनाथके लिये बहुत आसान बात है। १९०३ में उन्होंने एक दूसरा उपन्यास The wreck, लिखा। इसमें हिन्दू परिवारका आदर्श दिखलाया गया है कि परिवारमें एक दूसरेके प्रति हिन्दुओंकी भाव-भक्ति, प्रेम और सेवा किस तरह की होती है। १९०४ में देश-भक्ति-सम्बन्धी पद्योंका संग्रह, स्वदेश-संकल्पके नामसे निकला। इसने बहुत जल्द लोक-प्रियता प्राप्त कर ली। १९०५ में 'खेया' निकली। इसी समय उनके छोटे लड़केकी मृत्यु हो गई।

१६०५ में वंग-भंग आन्दोलन आरम्भ हुआ। बङ्गालके कोने कोनेसे एक ही आवाज उठने लगी। देश भक्ति दिखलानेका यह समय भी था। उस समय दलके दल बंगाली युवक स्वदेशी संगीत गाते हुए देशकी जनतामें नई आग फूंक रहे थे। परन्तु इस समय जितनी जोरदार आवाज रवीन्द्रनाथकी थी उतनी किसी दूसरेकी नहीं सुन पड़ी। कहते हैं कि राजनीति सम्बन्धी रवीन्द्रनाथके जैसे जोरदार और तर्क-सम्बद्ध प्रबन्ध अङ्गरेजी साहित्यमें भी बहुत कम निकलेंगे। विजय-मिलन,नामक वक्तृता रवीन्द्रनाथके जोशीले गद्यका उदाहरण है।

× × × × ×

कवीन्द्र रवीन्द्र एकाधारमें दार्शनिक, वक्ता, लेखक उपन्यासकार, नाट्यकार,, सुकवि और अच्छे अध्यापक हुए। आप अपनी नव नवोत्मेष शालिनी प्रतिभाको जब जिस ओर लगाते, वहीं वह अपना कमाल दिखा देती थी। आपने अपने सुशिक्षित कुटुम्बके लेखोंके सहारे 'भारती' नामकी एक उच्च कोटिकी साहित्यिक पत्रिका निकाली। आपही उसके सम्पादक थे। यह पत्रिका बादको आपहीकी कुटुम्ब भुक्ता श्री सरलादेवी चौधुरानी के सम्पादकत्वमें और इसके बाद अन्य कई प्रवीण साहित्यकोंके सम्पादकत्वमें निकलती रही और आज भी निकल रही है। बङ्ग भाषाकी सामयिक साहित्यमें इस पत्रका बहुत ऊँचा स्थान सदासे रहा है। इन दिनों आप बङ्गदर्शन, प्रवासी, मावञ्च तथा विभिन्न पत्रोंमें अपनी उत्कृष्ट कहानियाँ, लेख और कविताएं

प्रकाशित कराया करते थे। आपकी इन कृतियोंसे समस्त बङ्गालमें नवजीवनकी स्फूर्ति होती थी। लेखोंमें आपके विचार सर्वथा नये होते थे, अतएव कभी कभी प्रवीण साहित्यिक, साहित्यिक रवीन्द्रकी प्रतिभाकी उपेक्षा करना चाहते थे और उसका विरोध भी कर बैठते थे। पर आपका तो उस समय साहित्यपर सिक्का जम रहा था। इसलिये उन विरोधोंकी किसीने परवाह न की। रवीन्द्र द्वारा लिखित साहित्य दिन दिन जनताका आदर प्राप्त करने लगा। रवीन्द्र बङ्गभाषा साहित्यके बहुत ऊंचे सिंहासनपर अधिष्ठित हो गये।

अपनी मातृभाषाकी सेवा करते करते ही रवीन्द्रकी प्रतिभाने और भी चमत्कार दिखाना चाहा। अङ्गरेजी भाषापर आपका यथेष्ट आधिपत्य था। अतएव अब आपने अङ्गरेजीमें भी अपनी कहानियां, लेख तथा कविताएं लिखनी शुरू कीं। उनका प्रकाशन होते ही अङ्गरेजी पठित जनतामें आपके अङ्गरेजी साहित्यमें अवतरण करनेका खूब स्वागत हुआ। फिर तो आप धारावाहिक रूपसे बङ्गला और अङ्गरेजी दोनों भाषाओंके पत्रोंमें अपने पुख्ता विचार भरे लेख प्रकाशित कराने लगे। इन लेखोंने अङ्गरेजी साहित्यपर अपनी निराली धाक जमा दी। उससे कितने ही अङ्गरेज आपकी प्रतिभा और पाण्डित्यके कायल हो गये। अब रवीन्द्रको भला फुर्सत कहां? इङ्गलैण्ड और अमेरिकाके पत्रोंने रवीन्द्रके लेखोंको माडर्नरीव्यु आदि पत्रोंसे उद्धृतकर अपने पत्रोंकी लोकप्रियता बढ़ायी। इसके बाद ही आपने अङ्ग-

रेजीमें अपनी चुनी हुई कहानियोंका एक संग्रह किया, जो कि लण्डनके एक प्रसिद्ध पुस्तक-विक्रताने प्रकाशित कराया। उसकी प्रकाशित होनेके साथ ही लाखों प्रतियाँ छप गयीं। संस्करण पर संस्करण हुए उसके। फिर तो आपने अपने कई उपन्यास भी अंग्रेजोमें अनुवाद कर प्रकाशित कराये और उनका अच्छा आदर हुआ।

रवीन्द्र बाबू लार्ड मेकालेकी शिक्षण पद्धतिके चिर-कालसे विरोधी थे। उसकी व्यर्थताका अनुभव आपको बहुत दिनों पूर्व हो चुका था। एम० ए० और बी० ए० डिगरीधारी अङ्ग-रेजी शिक्षण-पद्धतिके चरम स्तर तक पहुंचे हुए विद्यार्थियोंका उद्देश्य-हीन, स्वदेशीय भावहीन जीवन आपकी निगाहोंमें बहुत दिनोंसे खटकता था। अतएव अपने देशके बालक और बालि-काओंको वास्तविक शिक्षासे शिक्षित करानेवाले एक आदर्श शिक्षालय स्थापनकी कल्पना आपके मस्तिष्कमें बहुत दिनोंसे उठ रही थी। उसकी सिद्धिके लिये विलक्षण कार्यक्रमपूर्ण योजनाका निर्माणकर आपने पहले उसे मित्रों, फिर सर्वसाधारण में उपस्थित किया। सभीने उस योजनाका हृदयसे अनु-मोदन किया और हर सम्भव प्रकारसे सहायता भी प्रदान की। परिणाम यह हुआ कि रवीन्द्रनाथकी लगन, कल्पना और कार्य तत्परताने अत्यन्त शीघ्र, प्राचीन विद्यापीठोंके आदर्श पर शिक्षाके सर्वाङ्गोंसे पूर्ण एक शान्तिनिकेतन नामका आश्रम 'बोलपुर' की पवित्र हरिद्भूमिमें स्थापित कर दिया। स्वयं रवीन्द्र ही हुए

उसके आचार्य, बङ्गालके, नहीं भारतके—नही नहीं विश्वके विख्यात-नसे विचक्षणी भूत विद्वान् हुए इसके अध्यापक और हुआ इसमें आदर्श शिक्षाका आरम्भ। देवर्षि तुल्य ठाकुर द्विजेन्द्रनाथ इसके तत्वाध्यापक बनकर वहीं जीवन व्यतीत करने लगे। वे रवीन्द्रबाबूके बड़े भ्राता थे। इस युगके आदर्श तपस्वी थे; ज्ञानकी अत्यन्त उच्च सीमा प्राप्त करली थी उन्होंने। इसका पाठ्यक्रम भी सर्वाङ्गपूर्ण रखा गया। जिन्होंने इस संस्थाको देखा है, उनका स्पष्ट मत है, कि भारत भरमें इस जोड़की दूसरी शिक्षण-संस्था नहीं है। इसमें शिक्षा पाया हुआ विद्यार्थी सच्चा विद्वान् हो जाता है। रवीन्द्रने इसकी अभिवृद्धिमें ग़ज़बका परिश्रम किया है।

शांतिनिकेतनकी सुव्यवस्था कर साहित्यव्रती रवीन्द्र फिर अपने व्रतमें लग गये। आपने इस बार कुछ अद्भुत भाव पूर्ण क्षुद्र कविताएं लिखनी आरम्भ कीं। और इसी समय हुआ उनका विदेश भ्रमण। इस भ्रमणमें प्रकृति देवीका आपने अत्यन्त सूक्ष्म निरीक्षण किया। स्वभावके कितने ही नूतन भाव मालूम हुए उन्हें। अध्यातमिक भावोंके तो आप पहुंचे हुए प्रेमी ठहरे। इन सभी भावों और देश विदेशके साहित्य अध्यन तथा अनुभवने आपकी प्रतिभाका और भी विकाश किया और इसके बाद जो लेखनी उठी, उसने तो कमाल ही कर दिया।

यह कमाल गीताञ्जलि हुई। गीतांजली बङ्गालकी गीता बन गयी। घर-घर, कण्ठ-कण्ठपर नृत्य करना शुरू किया

उसने। रवीन्द्रके परम मित्र मिस्टर एण्ड्रूजने भी सुना उसे। वह लोट पोट हो गया उसके भावोंपर और उसने छाती ठोंक कर कहा संसारके सम्मुख कि विश्व-साहित्य भरमें इस जोड़का ग्रन्थ नहीं निकलेगा। रविबाबूसे उसने गीतांजलिको अङ्गरेजी-में लिखनेके लिये प्रेरित किया। कविकी समझमें यह बात आ गई और जुट गये वे अङ्गरेजी गीतांजलिको लिखनेमें। पुस्तक पूरी हुई और सुन्दर प्रकाशन हुआ उसका अङ्गरेजी साहित्यमें। निकलते ही तो एण्ड्रूजकी वाणी सत्य हुई। तहलका मचा दिया अङ्गरेजी साहित्यमें उस ग्रन्थ रत्नने। विश्वद्रष्टाकी उस पर नजर गयी। उन्होंने उसे पढ़ा, अपनी कसौटीपर कसा और विशेष लक्षण युक्त पाया। पत्रोंमें उसकी चर्चा हुई। काव्यके मर्मज्ञोंने उसे विश्वसाहित्यका एक आभापूर्ण रत्न बताया और यूरोपकी सबसे बड़ी साहित्यिक संस्था "विज्ञान-कला-साहित्य-परिषद्‌का ध्यान उस ओर आकृष्ट किया। परिषद्‌के सदस्योंने रविबाबूकी गीतांजलिको देखा और उसे विश्व-साहित्यकी "सर्वश्रेष्ठ पुस्तक" करार देकर नोबिल प्राइज या आदर्श पुरस्कार पानेका हकदार बताया। परिषद्‌ने रवीन्द्रको एक लाख बीस हजारका वह सर्व विश्रुत पुरस्कार प्रदान किया और अपनी गुणग्राहकतासे सिद्ध किया कि रवीन्द्र 'कवीन्द्र' हैं।

इस पुरस्कारको पानेसे रवीन्द्रकी अत्यधिक ख्याति हुई। गीतांजलिके संस्करणपर संस्करण और संसारकी सभी श्रेष्ठ भाषाओंमें उसके अनुवाद हुए। संसार एक भारतीयकी उस

अद्वितीय प्रतिभाको देखकर दंग रह गया। उसमें जो अद्भुत दार्शनिक तथा आध्यात्मिक भाव भरे हुए थे, उनके आगे सभीने श्रद्धाके साथ अपने अपने मस्तिष्क झुकाये।

इस विश्वश्रद्धाको पाकर रवीन्द्र भारतके पूज्य महापुरुष प्रसिद्ध हुए। अमेरिका, जापान, चीन, जर्मनी, जिनेवा, इटली, फ्रांस और इङ्गलैंडकी राष्ट्रीय संस्थाओंने कवीन्द्रको अपने यहां आनेके लिये निमन्त्रण दिये, जिनकी रक्षा रविबाबूने क्रमशः कई बार यूरोप यात्रा करके की। चीन जापान और अमेरिका, तथा इटली और फ्रांसमें रवीन्द्रबाबूने वहांकी प्रसिद्ध संस्थाओंमें अपने दार्शनिक भाव भरे विचार काव्य-कुशल भाषामें व्याख्यान रूपमें प्रकट किये। प्रत्येक संस्थापर सुन्दर लेखों द्वारा अपने भावों का प्रकाशन किया और विश्व-प्रेममें आबद्ध होनेके लिये सब राष्ट्रोंके विद्वानोंसे अनुरोध किया।

आपकी इस विद्वत्तापर विदेशी ही मुग्ध हुए हों, सो नहीं, भारत गवर्नमेंटने भी आपको नाइट या 'सर' तथा "डि लिट्" जैसी सर्वोच्च उपाधियोंसे विभूषित किया।

रविबाबू जैसे कुशल साहित्य निर्माता हैं, वैसे ही उत्कृष्ट संगीतज्ञ और सफल अभिनेता भी हैं, आपने अपने लिखे नाटकोंमें प्रधान पात्रोंका स्वयं पार्ट किया है। कलकत्ता, बोलपुरमें हुए नाटकोंमें तो आपने अपनी नाट्यकारिताका परिचय दिया ही है। साथ ही यूरोपके विभिन्न देशोंमें भी आपने अपने नाटक स्वयं खेले और उनमें यशप्रद अभिनय कर वहांकी जनताको मुग्ध किया है।

इन सब बातोंके अलावा कवि रवीन्द्रनाथ भारतके आदर्श समाज-सुधारक हैं। और वह सुधार आजकलके अन्यान्य सुधारकोंकी भांति केवल सिद्धान्तोंमें ही सीमित नहीं है, आपके चरित्र और प्रत्येक कार्यमें उसका निदर्शन मिलता है। आपका परिवार भी एक उत्कृष्ट सुधरा हुआ परिवार है। जैसी आपकी सुधार सम्बन्धी उक्ति है, वैसी ही आपकी कृति भी है। भारतके राजनीतिज्ञोंमें और देश नेताओंमें भी आपका एक खास स्थान है। स्वदेश-प्रेमके आप जीवन्त स्वरूप हैं। देशकी प्रत्येक बड़ी बड़ी समस्याओंमें आपने सदा भाग लिया हैं। और उन पर बड़ी निर्भीकतासे अपने विचार प्रकट किये है। आपका यह स्वदेश-प्रेम केवल लेखों और व्याख्यानों तक ही रहा हो, यह नहीं, परन्तु आपने उसके लिये अपूर्व स्वार्थ त्याग और अपनी असीम निर्भीकताका भी परिचय दिया है।

सन् १९१८ के रालेक्ट एक्टके विरुद्ध देशके सङ्गठित सत्याग्रहकी बात लोग भूले न होंगे। उस समय भारतकी नौकरशाहीने पञ्जाबमें जो नरसंहार-लीला की थी, वह उसके जीवनेतिहासकी अत्यन्त कालिमा पूर्ण कथा है। रविबाबूने जिस दिन पञ्जाबके मार्शलाके अमानुषिक अत्याचारोंकी बात सुनी, उस समय आपके स्वदेश प्रेम प्लावित हृदयको बड़ी भारी चोट पहुंची। भारतकी पश्चिम दिशाकी लगी हुई चोटका प्रत्याघात पूर्व दिशाको अनुभूत हुआ और खूब हुआ। रवि बाबू की देश-प्रणता जागी। आपने बड़ी निर्भीकतासे नौकरशाहीके पञ्जाबी नृशंस अत्याचारोंपर

घोर घृणा प्रकटकी, पुरज़ोर शब्दोंमें बड़ी निन्दा की और तत्काल सरकारकी दी हुई 'नाइट' आदि की उपाधियां वाइसरायके पास लौटाकर अपने अनुपम सहयोगका परिचय दिया। उस दिन भारतने जाना कि रवि बाबूमें आवश्यकता पड़ने पर अनुपम स्वार्थत्याग कर दिखाने योग्य भी आत्मबल है।

एक उसी बार आपने सरकारके उच्च पदस्थ अफसरोंको फटकारा हो सो नहीं, पिछले दिनों बङ्गालके गवर्नर सर लिटन साहबने जब अपने एक व्याख्यानमें भारतवासियोंको अत्यन्त अपमान कारक शब्दोंमें स्मरण किया, रवीन्द्र बाबूने उस स्मरणको भारतीय नारी जातिका महान अपमान माना, और लार्ड लिटनको खुले खजाने वह फिटकार बताई कि लाटसाहब उसकी सफाई ही देते फिरे।

रवि बाबूका जीवन-पथ बहुत विस्तृत है। उद्देश्य भी उनके अभी अपूर्ण हैं। वे निरन्तर उनकी पूर्त्ति प्रयत्न पूर्वक किये जाते हैं। उन्होंने अपने लोकोत्तर कार्योंसे भारतका मुखोज्वल किया है। आज विश्वसभामें भारतको एक आदरपूर्ण स्थान रवीन्द्र-नाथने ही दिलाया है। वे चिरायु हों, भारतका और भी सर्वाङ्गीण हित साधन करें यही हमारी ईश्वरसे प्रर्थना है।

रवीन्द्र-कविता-कानन

प्रतिभाका विकास।

यों तो आत्म-विश्वास सभी मनुष्योंको होता है—सभीलोग अपनी शक्तिका अन्दाजा लगा लेते हैं, फिर कवियों और महाकवियोंके लिये वह कौन बहुत बड़ी बात है। दूसरे लोगोंको तो अनुमान मात्र होता है कि उनमें शक्तिकी मात्रा इतनी है, परन्तु वे उस अनुमानको विशद रूपसे जन-समाजके सामने रख नहीं सकते ; कारण, उनपर वागदेवीकी वैसी कृपा दृष्टि नहीं होती ; परन्तु जो कवि हैं, उन्हें जब अपनी प्रतिभाका ज्ञान हो जाता है तब वे, दूसरोंकी तरह निर्वाक रहकर अथवा थोड़े ही शब्दोंमें, अपनी प्रतिभाका परिचय नहीं देते। वे तो अपने लच्छेदार शब्दोंमें पूर्ण रूपसे उसे विकसित कर दिखानेकी चेष्टा करते हैं। नहीं तो फिर सरस्वतीके वरपुत्र कैसे ? महाकवि श्रीहर्षने अपने नैषध-काव्यकी अध्याय-समाप्तिमें और कहीं महाकवि भवभूतिने भी, कैसे पुरजोर शब्दोंमें अपने महत्वकी याद की है, यह संस्कृतके पण्डितोंको अच्छी

तरह मालूम होता है! परन्तु, कवियों और महाकवियोंके लिये इस तरहका वर्णन न तो अतिशय-कथन कहा जा सकता है और न प्रलाप ही। यह तो उनके आत्म-परिचयके रूपमें किया गया उनका उतना ही स्वाभाविक उद्गार है जितना प्रकृतिका, बसन्त अस्तु, प्रतिभाके विकास-कालमें महाकवि रवीन्द्रनाथ किस तरहसे हृदयकी बातें खोल रहे हैं, सुनिये :—

"आजि ए प्रभाते सहसा केनरे
पथहारा रवि-कर
आलय न पेये पड़ेछे आसिये
आमार प्राणेर पर
बहु दिन परे एकटी किरण
गुहाय दियछे देखा
पड़ेछे आमार आंधार सलिले
एकटी कनक-रेखा।"

(आज इस प्रभातके समय, सूर्यकी एक किरण एकाएक अपनी राह क्यों भूल गई, यह मेरी समझमें नहीं आता। वह कहीं ठहरनेकी जगह न पा, मेरे प्राणोंपर आकर गिर रही है। मेरे हृदयकी कन्दरामें बहुत दिनोंके बाद एक किरण दिखाई दे रही है—मेरी अन्धकार सलिल-राशि पर सोनेकी एक रेखा खिंची हुई है!)

पाठक! वर्णनाकी मनोहारिता पर ध्यान दिजिये। हृदयकी इस उक्तिको अपने विचारके तराज़ू पर तोलकर देखिये, यह पूरी

उतरती है या स्वभावोक्तिमें कहीं कोई कसर, कोई त्रुटि, कोई वाचलता, कोई बनावट या कोई मनगढ़न्त है।

कवि हृदयका यह प्रथम प्रभात है। बाहरकी जिस किरणको पाकर कविने ये इतनी उक्तियां कही हैं, वह किरण बाहरी संसारके भगवान भुवन-भास्करकी किरण नहीं, वह वनदेवीकी ही प्रतिभाकी किरण है—उसीकी कनक-रेखा कविके हृदयपटपर खिंच गई है। बहुत दिनोंतक हृदयमें अन्धकारका राज्य था, वहांतक किसी तरहकी ज्योति पहुंच न सकती थी। कवि भी अंधेरेमें पड़ा हुआ था। जिस दिन हृदयमें एकाएक इस कनक-किरणका प्रवेश हुआ, कवि चौंक पड़ा। अपने महान स्वरूप को देखकर वह मुग्ध हो गया। उसे पहले स्वप्नमें भी यह विश्वास न था कि वह इतना महान है—उसके भीतर इतनी शक्ति है—इतनी प्रतिभा है—इतनी विशालता है। वह इस सम्बन्धमें स्वयं कहता है—

"प्राणेर आवेग राखिते नारि,
थर थर करि कांपिछे वारि,
टलमल जल करे थल थल,
कल कल करि धरेछे तान।
आजि ए प्रभाते कि जानि केनरे
जागिया उठेछे प्राण!"

(मैं अपने प्राणोंके आवेगको रोक नहीं सकता। मेरे हृदयकी सलिल-राशि थर-थर कांप रही है। जल टलमल कर

रहा है—उथल-पुथल मचा रहा है—कल-कल स्वरसे रागिनी अलाप रहा है। आज इस प्रभातमें मेरे प्राण क्यों जग पड़े, यह मेरी समझमें नहीं आता!)

देखा आपने? यह काव्य-प्रतिभाके प्रथम विकासका समय है। हृदय खुल गया है। हृदय-सरोवरकी सलिल-राशि छोटी-छोटी लहरियोंसे मचल रही है। कविको यह देखकर आश्चर्य्य हो रहा है। उसने अपने जीवन-कालमें अपनी अवस्थाका इस तरह विपर्य्यय कभी नहीं देखा। यह सब उसकी समझमें नहीं आता। वह आश्चर्य्य-चकितसा अपने हृदयमें लहरियोंकी चहल-पहल देख रहा है, उनके मृदु शब्दोंमें रागिनीकी स्पष्ट झंकार सुन रहा है और वही रागिनी संसारको वह सुना रहा है।

जबतक कविकी हृदयकी आंखे नहीं खुली थीं तबतक उसे अपनी पूर्ण अवस्थाका ज्ञान न था—जिस अंधकारमें पहले वह था, उसके सम्बन्धमें वह कुछ भी न जानता था। अंधेरेमें पड़ा हुआ ही वह अपने सुखके कितने ही स्वप्न देखा करता था किन्तु उस अँधेरेको वह अंधेरा न जानता था, इसीलिये कहता है—

"जागिया देखिनु चारिदिके मोर
पाषाणेरमित कारागार घो
बुकेर उपरे आंधार बहिया
करिछे निजेर ध्यान,
नाजानि केनरे एतो दिन परे
जागिया उठेछे प्राण!"

(जगकर मैंने देखा, मेरे चारों ओर पत्थरोंका बनाया हुआ घोर कारागार है, और मेरी छाती पर बैठा हुआ अन्धकार अपने ही स्वरूपका ध्यान कर रहा है। इतने दिनों बाद क्यों मेरे प्राण जग पड़े, यह मेरी समझमें ही नहीं आता।)

जब कविकी आखें खुल जाती हैं, उसे अच्छे आर बुरेका विवेक हो जाता है, तभी वह अपनी और दूसरोंकी परिस्थितिका विचार कर सकता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ जगकर देखते हैं कि उनके चारों ओर पत्थरोंका कारागार है। भला यह पत्थरोंका कारागार है क्या चीज ? इसके यहां कई अर्थ हो सकते हैं और सभी सार्थक। पहले तो यह कहना चाहिये कि यह अज्ञान है क्योंकि जगकर कविने पहले अपनी पूर्ण-परिस्थिति-ज्ञान होनेसे पहलेकी परिस्थिति यानी अज्ञानको ही देखा होगा। जिस भयानक अवस्थामें पड़े हुए भी जिसका ज्ञान कविको नहीं हो रहा था,पहले उसीकी मूर्त्ति देखी होगी। अर्थात् ज्ञान होने पर पहले कविने अपने अज्ञानका अनुभव किया होगा। परन्तु कवि कहता है, मेरे चारों ओर पत्थरोंका घोर कारागार है। इस 'चारों कोर' शब्दसे सूचित होता है कि कविको बाहर भी घोर अज्ञान देख पड़ा होगा—उसे बाहरके मनुष्य—उसके पास-पड़ोस वाले भी अज्ञान-दशामें पड़े हुए देख पड़े होंगे। कविका यह दर्शन निरर्थक नहीं। उसके चारों ओर जो प्रकृति नजर आई, वह भारत है। यहां पत्थरके कारागृहमें कविके साथ भारत भी कैद है। आगेकी पंक्तिमें यह अथ और समझमें

आ जाता है। जहां कवि कहता है,—हृदय पर अन्धकार बैठा हुआ अपना ध्यान कर रहा है, वहां अन्धकारके साथ कवि अपने मोहका भी उल्लेख करता है और देशको दुर्दशाग्रस्त करने वाले विदेशियोंका भी। यहां विदेशियोंकी तुलना अन्धकारके साथ करके, उसे अपनी और साथ ही देशके हृदय पर बैठकर अपना ध्यान करता हुआ यानी अपना स्वार्थ निकालता हुआ बतलाकर कवि देशकी दुर्गतिका चित्र ही आंखोंके सामने रख देता है। यह अंकण इतनी सफलता पूर्वक किया गया है कि इसकी प्रशंसाके लिये कोई योग्य शब्द ही नहीं मिलता। यह पद्य एक ही अर्थकी सूचना नहीं देता, उसका पहला अर्थ खुलासा है, और वह पढ़नेके साथ पहले अध्यात्मिक भावकी ओर इंगित करता है। हृदय ज्ञान होनेसे पहले अन्धकाराच्छन्न हो रहा है। वहां किसी प्रकारका प्रकाश प्रवेश नहीं कर पाता। अन्धकार वहां बैठा हुआ अपने ध्यानमें मग्न है। हृदय अनेक प्रकारकी अविद्याओंका राज्य हो रहा है। अविद्याके प्रभावसे वहां जितने प्रकारके अनर्थ हो सकते हैं, हो रहे हैं। ऐसे समय एकाएक हृदयपरकी वह काली यवनिका उठ जाती है, वहां विद्याका प्रकाश फैल जाता है। अचानक यह परिवर्तन देखकर कवि अपने प्रकाश-पुलकित हृदयसे कह उठता है—आज इतने दिनों बाद मेरे प्राणोंमें यह कैसा जागरण हो गया?

अपने प्रेम और आनन्दके अनादि प्रवाहमें बहता हुआ कवि कहता है—

"घुमाये देखिरे जेन स्वपनेर मोह माया,
पड़ेछे प्राणेर माझे एकटी हासिर छाया।
तारि मुख देखे देखे, आंधार हासिते सेखे,
तारि मुख चेये चेये करे निशि-अवसान,
सिहरि उठेरे वारि दोलेरे दोलेरे प्राण,
प्राणेर माझारे भासि, दोलेरे दोलेरे हासि,
दोलेरे प्राणेर परे आशार स्वपन मम
दोलेरे तारार छाया सुखेर आभास सम।
प्रणय प्रतिमा जबे स्वपने देखेरे कवि,
अधीर सुखेर भरे कांपे बुक थरे थरे,
कम्पमान वक्ष परे दोलेसे मोहिनी छवि,
दुखीर आधार प्राणे सुखेर संशय यथा,
दुलिया दुलिया सदा मृदु मृदु कहे कथा;
मृदु भय, कभु मृदु आश
मृदु हासी, कभु मृदु श्वास।
बहु दिन परे सोन विस्मृत गानेर तान,
दोलेरे प्राणेर माझे दोलेरे आकुल प्राण;
आध, आध, जागिछे स्मरणे,
पड़े पड़े नाहीं पड़े मने।
तेमनी तेमनी दोले, तारारी आमार कोले,
कर ताली दिये वारि कल कल गान गाय
दोलाये दोलाये जेनो घूम पाड़ाइते चाय।"

(सोते हुए मैंने देखा, स्वप्नकी मोह-मायाकी तरह मेरे प्राणों में हंसीकी एक छाया पड़ी हुई है। उसीका मुंह देख देखकर अन्धकार भी हंसना सीखता है और उसीका मुंह जोहता हुआ वह रात्रिका अवसान कर देता है; (यह देख) पानी भी सिहर उठता है और मेरे प्राण भी झूमते रहते हैं। प्राणोंके भीतर तैरती हुई हंसी भी झूम रही है—उसमें भी मन्द मन्द कम्पन हो रहा है, और मेरे प्राणोंमें मेरी आशाका स्वप्न झूम रहा है और वहां झूमती-हिलती-कांपती है सुखके आभासकी तरह तारोंकी छाया। जब स्वप्नमें कवि अपनी प्रणय-प्रतिमाको देखता है, तब अधीर—सुख पर निर्भर—हृदय थर-थर कांपने लगता है और उस कम्पमान हृदय पर कांपती है वह मोहिनी छवि—जिस तरह दुखीके अन्धकार—प्राणोंमें सुखका संशय सदा कांप-कांप कर मृदु-मृदु बातें किया करता है। जिसमें मृदु भय भी है और कभी मृदु आशा भी झलक जाती है—मृदु हंसी है और कभी मृदु सांस भी वह चलती है। वह बहुत दिनोंके बाद सुनी हुई भूले संगीतकी तान है जो प्राणोंमें कांप रही है और जिससे प्राण भी कांप रहे हैं, जिसकी अध-मुदी स्मृति मेरे स्मरण-पथपर जग रही है—अभी अभी आती है और फिर मुझे विस्मृतिमें छोड़ जाती है—इसी तरह वह तारा मेरी गोदमें कांप रहा है, लहरियां तालियां बजा-बजा कर गाती हैं, मुझे झूलेमें झुलाकर मानों सुला देना चाहती हैं।)

जागरणके बाद यह कविका अनन्दोद्गार है। वह सो रहा

था—दृष्टिके आगे अंधेरा ही अंधेरा छाया हुआ था, ऐसे समय एक छोटी सी तरंगकी तरह—स्वप्नकी सुन्दरता और चञ्चलताकी तरह उसके हृदयमें हंसीकी एक बहुत छोटी लहर उठती है—अपने कंपनके साथ—अपनी मृदु चंचलताके साथ—उसे भी चंचल कर देती है—उसे भी कंपा देती है। यहां कविके दार्शनिक ज्ञानका भी आभास मिलता है और कवितामें युक्तिकी पुष्टि! कविके हृदयमें जब चक्राकार हंसीकी हिलोर उठती है तब उसके साथ केवल वही नहीं किन्तु सम्पूर्ण विश्व-छवि उसे डोलती हुई और हंसती हुई नज़र आती है। उसकी हंसीके मृदु कंपनके साथ अन्धकार हंसता है, पानीकी हिलोरें हंसती हैं, ताराकी छायामें हँसीका कम्पन भर जाता है, स्वप्नकी प्रणय-प्रतिभा हृदयके नृत्यके साथ-साथ हंसती है। दार्शिनिक कहते हैं, जैसा भाव हृदयमें होता है, बाहर भी उसी भावकी छाया देख पड़ती है। जब दुःख होता हैं तब जान पड़ता है, सम्पूर्ण प्रकृति खूनके आंसू बहा रही है और जब हृदयमें आनन्दका नृत्य होता है तब प्रकृतिके पल्लव-पल्लवमें उसे आनन्दका नृत्य देख पड़ता है। इस तरह दार्शनिक भीतर की प्रकृति और बाहरकी प्रकृतिमें कोई भेद नहीं बतलाते। यहां महाकवि रवीन्द्रनाथने जागृतिके साथ हो जिस हँसीकी छाया आकर उनके प्राणोंको खिला जाती है, उसके साथ हम देखते है, विश्वभरकी प्रकृति कविके इस आनन्द-स्वरमें अपना स्वर मिलाकर उनकी मनोनुकूल रागिनी गाने लगती है। इस हँसीके चित्र चित्रणमें आपने कमाल किया है। अन्धकारको

हसाकर। जो अंधकार पहले छातीका डाह हो रहा था, वह कविकी इस हँसीका मुंह देख-देख हँसना सीख रहा है। "तारि मुख देखे-देखे, आंधार हासिते सेखे" (इसका मुंह देख-देखकर अंधकार हँसना सीखता है। यहां, हंसना सीखना है, इस वाक्यमें सहित्यके साथ मनो-विज्ञानकी पूरी छटा है। अंधकार स्वभावतः गम्भीर है। उसके लिये हँसना अपनी प्रकृतिका अपमान करना है। और पहले कविने उसकी क्रूरताका ही दिग्दर्शन कराया है; यही नहीं किन्तु उसे बड़ा ही निठुर और ममनागहिन —स्वार्थपर वतलाया है। ऐसी दशामें, यदि कवि अपनी सम्पूर्ण भीतरी और बाहरी प्रकृतिके साथ उसे भी हँसाते तो मजा कुछ किरकिरा हो जाता। दूसरे कवि उसे हँसाना चाहते तो एकाएक हँसा दे सकते थे, परन्तु रवीन्द्रनाथ जैसे कुशल चित्रकार ऐसी भूल कब कर सकते थे? उन्होंने उसे हँसाया नहीं किन्तु अपनी हास्यमयी प्रकृतिसे उसे मुग्ध करके हँसाना सिखा रहे हैं। उनकी हँसीकी हिलोरमें अन्धकारका भी हृदय पिछल जाता है, वह भी हँसना चाहता है, परन्तु पहले कभी न हंसनेके कारण वह हंस नहीं सकता—वह हास्यमयी प्रकृतिका मुंह देख चाहता है कि हंसे पर हंस नहीं सकता, अतएव हंसना सीख रहा है। यहां एक बात और ध्यान देने लायक है। पहले अन्धकारकी निर्दयता दिखलाई जा चुकी है, विदेशियोंकी क्रूर प्रकृतिके साथ भी उसकी तुलना की गई है। परन्तु अब रवीन्द्रनाथ अपनी हास्यमयी प्रकृतिकी छटा दिखाकर उसे अपनी ओर इस

तरह खींच लेते हैं कि उसे भी हंसनेकी इच्छा होती है—परन्तु क्रूर एकाएक हँस नहीं सकता—उधर हँसीका जमा हुआ रंग भी उसपर इस तरह पड़ जाता है कि वह अपने स्वभावको वहाँ भूल जाता है और निर्दयताकी अपेक्षा हास्यको ही ज्यादा पसन्द करता है, इसीलिये हँसना सीखता है। इससे सिद्ध है कि अपनी निर्भय और स्वाभाविक प्रसन्नताके द्वारा क्रूरोंके मन-पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है। देशकी ओर रवीन्द्रनाथका यह भी एक बहुत बड़ा इशारा है और यौक्तिक तथा दार्शनिक। तत्वकी एक बात और कविने इन पंक्तियोंमें कह डाली है। पहले जीवनमें अन्धकार था। जीवनका अन्धकार मोह-मय था अतएव निश्चेष्ट था, उसमें कोई भी क्रिया शीलता न थी, वह जड़ था। जब विद्याकी ज्योति हृदयमें पहुंची, जागृतिका युग आया, तब हृदयके मधुर स्पन्दनके साथ विश्वसंसारमें कम्पन भर गया,—तब हृदयके साथ सारी प्रकृति नृत्यमयी हो गई—स्वप्नमें नर्तन, हृदयमें नर्तन, प्रणयकी प्रतिमामें नर्तन, सुखकी निर्भरतामें नर्तन, मोहिनी प्रतिमामें नर्तन, स्मृति और अधमुदी विस्मृतिमें नर्तन, तारोंमें नर्तन, जलकी लहरियोंमें नर्तन, और सोते समयके झूलेमें नर्तन होने लगा— सबमें जीवनकी स्फूर्ति आ गई—पहलेकी—वह जड़ता दूर हो गई।

अभी यह नर्तन बहुत ही मृदुल है, अभी यह कोमल कुमारका नर्तन है, अभी इसमें यौवनका उद्दाम ताण्डव नहीं आया? अभी इस प्रथम जागरणके नर्तनमें केवल सौन्दर्य है, कर्म नहीं, सुख

है किन्तु तृष्णा नहीं, प्रेम है किन्तु लालसा नहीं, कल्पना है किन्तु कला नहीं, जीवन है किन्तु संगठन नहीं। जब वह समय आता है जब कविकी लालसा संसारके एक छोरसे लेकर दूसरे छोर तक फैल जाती है, जब हृदय अपने ही आधारमें रहकर सन्तुष्ट नहीं रहता,—वह न जाने कहां,—उस किस विशालताको समेट लेना चाहता है, जब प्रतिभा सुन्दरी यौवनके सुचारु दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर कुछ गर्व करना, कुछ मान करना, कुछ अधिक प्रेम करना, कुछ वियोग करना, कुछ रूपका अभिमान करना सीखनेके लिये लालायित होती है, तब महाकविके हृदयोद्गार इन स्वरूपोंमें बदल जाते हैं :—

"जागिया उठेछे प्राण,
(ओरे) उथली उठेछे वारी,
ओरे प्राणेर वासना प्राणेर आवेग
रुधिया राखिते नारी।
थर थर करि कांपिछे भूधर
शिला राशि राशि पड़िछे खसे,
फुलिया फुलिया फेनिल सलिल
गरजि उठिछे दारुण रोषे।
हेथाय होथाय पागलेर प्राय
घुरिया घुरिया मातिया बेड़ाय,
बाहिरिते चाय, देखिते ना पाय
कोथाय कारार द्वार।

प्रभाते रे जेनो लइते काड़िया,
आकाशेरे जेनो फेलिते छिंड़िया
उठे शून्य पाने पड़े आछाड़िया
करे शेषे हाहाकार।
प्राणेर उल्लासे छुटिते चाय,
भूधरेर हिया टुटिते चाय,
आलिंगन तरे ऊद्र्ध्वे बाहु तुलि
आकाशेर पाने उठिते चाय।
प्रभात किरणे पागल होइया
जगत माझारे लुटिते चाय।
केन रे विधाता पाषाण हेनो,
चारिदिके तार बांधन केनो?
भांगरे हृदय भांगरे बाधन,
साधरे आजिके प्राणेर साधन,
लहरीर :परे लहरी तुलिया
आघातेर परे आघात कर;
मातिया जखन उठेछे पराण,
किसेर आंधार, किसेर पाषाण,
उथलि जखन उठेछे वासना
जगते तखन किसेर डर।"

(मेरे प्राण जग पड़े हैं, मेरे हृदयकी सलिल-राशि उमड़ रही है, मैं अपने हृदयकी वासनाओंको—अपने प्राणोंके आवे-

गको रोक नहीं सकता। भूधर थर-थर कांप रहा है, शिला-ओंकी राशि उससे छुटकर गिर रही है। फेनिल सलिल फूल-फूल कर बड़े ही रोषसे गरज रहा है। पागलकी तरह वह जहां-तहां मतवाला हो कर घूम रहा है। वह निकलना चाहता है। परन्तु कारागारका द्वार उसे देख नहीं पड़ता, मानो वह प्रभात को छीन लेनेके लिये, आकाशको फाड़ डालनेके लिये, शून्यकी ओर बढ़ता है, परन्तु अन्तको रास्तेमें ही गिर कर हाहाकार करता है। प्राणोंके उल्लाससे वह दौड़कर बढ़ना चाहता है, जिसे देखकर पहाड़का हृदय भी टुकड़ा-टुकड़ा हुआ चाहता है, वह आलिंगनके लिये ऊर्द्ध्व पथकी ओर अपनी बाहें बढ़ाकर आकाशकी ओर चढ़ जाना चाहता है। वह प्रभातकी किरणों में पागल होकर संसारमें लोटना चाहता है। विधाता! इस तरहका पत्थर क्यों है? उसके चारो ओर इस तरहके बन्धन क्यों हैं? हृदय! तोड़ इन बन्धनोंको। अपने हृदयकी साधना पूरी कर ले, लहरियों पर लहरियां उठाकर आघात पर आघात कर, जब प्राण मस्त हो रहे हैं तब अन्धेरा कैसा और कैसा पत्थर? जब वासना उमड़ चली है तब संसारमें फिर किस बातका भय?)

यह प्रतिभा-विकाशकी यौवनच्छटा है। आगे चलकर अपनी वासनाओंकी पूर्तिके लिये महाकवि लिखते हैं:—

“आमि—ढालिब करुणा-धारा
आमि—भांगिब पाषाण-कारा,

आमि—जगत् प्लाविया बेड़ाब गाहिया
आकुल पागल पारा ।
केश एलाइया, फूल कुड़ाइया,
रामधनु आंका पाखा उड़ाइया,
रविर किरणे हासी छड़ाइयां
दिबरे पराण ढाली ।
शिखर होइते शिखरे छुटिब,
भूधर होइते भूधरे लुटिब,
हेसे खल खल, गेये कल कल
ताले ताले दिब ताली ।
तटिनी होइया जाइब बहिया—
जाइब बहिया—जाइब बहिया—
हृदयेर कथा कहिया कहिया
गाहिया गाहिया गान,
जतो देव प्राण बहे जाबे प्राण,
फुराबे ना आर प्राण ।
एतो कथा आछे, एतो गान आछे
एतो प्राण आछे मोर,
एतो सुख आछे एतो साध आछे,
प्राण होये आछे भोर ।"

(मैं करुणाको धारा बहाऊंगा, मैं पाषाणका कारागार तोड़ डालूंगा, मैं संसारको प्लावित करके व्याकुल पागलकी तरह गाता

हुआ घूमता फिरूंगा। मैं अपने बाल खोलकर फूल चुनकर, अपने इन्द्रधनुषके पङ्ख फलाकर सूर्यकी किरणोंमें अपनी हँसी मिलाकर सबमें जान डालूंगा। मैं एक शिखरसे दूसरे शिखरपर दौड़ूंगा, एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर लोटूंगा, खिलखिलाकर हसूंगा, कल-कल स्वरोंमें गाऊंगा और ताल-तालपर तालियां बजाऊंगा। मैं नदी बनकर हृदयकी बात कहता हुआ,—गाने गाता हुआ बह जाऊंगा, जितना ही मैं जान डालता रहूंगा, उतना ही मेरे प्राण बहेंगे, फिर मेरे प्राणोंका शेष न होगा। मेरी इतनी बातें हैं,इतने मेरे ज्ञान हैं, इतना जीवन और इतनी आकाक्षाएं हैं कि मेरे प्राण उनसे मस्त हो रहे हैं।)

जिस समय हृदयके अन्तस्थलको आलोक-पुलकित प्रतिभाका अमर वर मिल रहा था,—जिस समय पार्थिव और स्वर्गीय रश्मियां एक साथ मिल रही थीं,—जिस समय सलिल-राशि अपने प्रवाहके लिये स्वयं ही अपना रास्ता बना रही थी,—जिस समय कलीके भीतरकी अवरुद्ध गन्ध अपने विकासके लिये—प्रकृतिके सौन्दर्यके साथ अपना सौन्दर्य मिलानेके लिये—अपनी सुन्दरताका बिम्ब दूसरोंकी प्रसन्नतामें देखनेके लिये, मचल-मचलकर कलीके कोमल दलोंमें धक्का मार रही थी, महाकवि रवीन्द्रनाथकी ये उसी समयकी युक्तियां हैं। कलीकी सुगन्धकी तरह महाकविकी प्रतिभा भी अपनी छोटीसी सीमाके भीतर सन्तुष्ट नहीं रहना चाहती। वह हर एक मानवीय दुर्बलताको परास्त करना चाहती है। यह उसका स्वाभाविक धर्म भी है। क्योंकि

दैवी-शक्ति वही है जो मानवीय बन्धनोंका उच्छेद कर देती है। जो बन्धन मनुष्यको कर्मशः दुर्बल करते जाते हैं, उन्हें खोलकर मनुष्यको मुक्त कर देनेकी शक्ति दैवी-शक्तिमें ही है। कभी-कभी आसुरी उच्छृङ्खलता भी मानवीय पाशोंका कृतान करती है, और अधिकांश समयमें,दैवी-शक्तिके बदले आसुरी-शक्तिको ही मानवीय श्रृङ्खलाओंके नाशके लिये जन-समाजमें उच्छृङ्खलताका बीजरोपण करते हुए हमलोग देखते हैं। कि प्रायः हमलोग उसीकी क्षणिक उत्तेजनाके वशमें आकर उसके विषमय भविष्य फलकी ओर ध्यान देना उस समय भूल जाते हैं। इससे जन-समुदाय एक कदम पीछे ही हट जाता है, यद्यपि पहले उसे आसुरी उत्तेजनाके द्वारा बढ़नेका एक लालच-ऐसा होता है। परन्तु रवीन्द्रनाथकी यह उत्तेजना आसुरी उत्तेजना नहीं, उनकी यह ललकार जन-समुदायमें किसी प्रकारकी आसुरी भावना नहीं लाती। यह शब्द सोते हुओंको जगाता है, उन्हें अपनाकर—अपने स्वरूपमें उन्हें भी मिलाकर—अपने भाव उनमें भी भरकर, अपनी ही तरह उन्हें भी उठाकर खड़ा कर देता है और उन्हें सुनाता है एक वह मंत्र जो जागरणके प्रथम प्रभातमें हर एक पक्षी संसारको सुनाया करता है, जिसमें उसका अपना स्वार्थ कुछ भी नहीं है,—है केवल अपने आनन्दके स्वरसे दूसरोंको सुख देनेकी एक लालसा—स्वार्थपर होनेपर भी निःस्वार्थ। रवीन्द्रनाथ अपने भावका इसी निःस्वार्थ प्रेरणासे संसारको पुकार कर जागरणका सङ्गीत
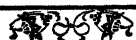
सुना रहे हैं। यदि कुछ और तह तक पहुंचकर कविकी इस पुकारकी छान-बीन की जाय तो हम देखेंगे, यह कविकी नहीं, किन्तु उसी प्रतिभाकी पुकार है, उसी देवी-शक्तिकी अभ्युत्थान-ध्वनि है, जिसके आविर्भावसे कविका हृदय उद्भासित हो उठा था। इस ध्वनिसे जन-समुदायका कोई अनर्थ नहीं हो सकता। इसमें भी उत्तेजना है, किन्तु क्षणिक नहीं। यह निर्जीवोंको जिला देनेके लिये, पददलितोंमें उत्साहकी आग भड़कानेके लिये, नग्न हृदयोंको आशाकी सुनहरी छटा दिखानेके लिये, सदा ही ज्योंकी त्यों बनी रहेगी। यह अपने आनन्दकी ध्वनि है, किन्तु इसमें दूसरे भी अपना प्रतिबिम्ब देख लेते हैं। यह व्यक्ति और देशके लिये तो ससीम है किन्तु विश्वके लिये निस्सीम। ऐकदेशिक भावोंका मनुष्य इसमें ऐकदेशिक भावकी सुरीली किन्तु ओजस्विनी रागिनी पाता है और वह उसीके भावोंमें मस्त हो जाता है, और व्यापक विश्वभावोंका मनुष्य इसमें व्यक्तिकी वह असीमता देखता है जिसकी समाप्ति, जीवनकी तो बात ही क्या, युग और युगान्तर भी नहीं कर सकते। ससीम और असीम, ऐकदेशिक और व्यापक, ये दोनों ही भाव महाकविकी इस उक्तिमें पाये जाते हैं। इससे देशका भी कल्याण होता है और विश्वका भी। यही इसकी विचित्रता है और यही इसका सौन्दर्य—अनूठापन। इन पंक्तियोंके पाठसे पहले इसके क्रान्तिमूलक अतएव आसुरी होनेका भ्रम हो जाता है; क्योंकि, लहरीर पर लहरी तुलिया, आघातेर

पर आघात कर' आदि पंक्तियोंमें शक्तिकी मात्रा इतनी है कि स्वभावतः इनके क्रान्तिभावमयी होनेका विश्वास हो जाता है; परन्तु नहीं, कविताके पाठसे जिस स्नायविक उत्तेजनाके कारण ऐसा होता है वह उत्तेजना पढ़नेवाले हो की दुर्बलता है, वह कविताका क्रांतिकारी आसुरो भाव नहीं। हमारा मतलब क्रांति-से यहां आसुरी भावको लेकर है। यदि इस क्रांतिको कोई दैवी क्रांति कहे और इसका उपयोग मानवीय दुर्बलताके विरोध में करनेके लिये तैयार हो तो हम इसके मान लेनेमें हिचकि भी नहीं करेंगे। हम स्वयं यह मानते हैं कि, जिस कविताका प्रणयण दैवी-शक्तिके द्वारा हुआ है, उसका उपयोग मानवीय दुर्बलताओंके विरोधमें स्वच्छन्दता पूर्वक किया जा सकता है, और उससे दैवी भावनाओंको हो प्रोत्साहन मिलता है, न कि किसी आसुरो उत्तेजना और आसुरी भावना को।

कविको जब अपनी महत्ताका अनुभव होता है तब वह इस प्रकार अपनी व्याप्तिका वर्णन करता है—

> "रवि-राशि भांति गाथिबो हार,
> आकाश आंकिया परिबो बास।
> सांझेर आकाशे करे गालागलि,
> अलस कनक जलद राश।
> अभिभूत होये कनक-किरणे;
> राखिते पारे ना देहेर भार।
> येनोरे विवशा होयेछे गोधुलि,

पूरबे आंधार बेणी पड़े खुलि ।
पश्चिमेते पड़े खसिया खसिया,
सोनार आंचल तार ।
मने हबे येन सोना मेघ-गुलि
खसिया पड़ेछे आमारि जले
सुदूरे आमारि चरण-तले ।
आकुली-विकुली शत बाहुतुलि
यतो इ ताहारे धरिते जाबो
किछु तेई तारे काछे न पाबो ।
आकाशेर तारा आबाक हबे
साराटी रजनी चाहिया रबे
जलेर तारार पाने ।
ना पाबे भाविया एलो कोथा होते,
निजेर छायारे जाबे चूम खेते
हेरिबे स्नेहेर प्राणे ।
श्यामल आमार दुइटी फूल,
माझे माझे ताहे फुटिबे फूल ।
खेला छले काछे आसिया लहरी
चकिते चुमिया पलाये जाबे,
शरम-विमला कुसुम रमणी
फिराबे आनन शिहरि अमनी
आवेशेते.शेषे.अवश् होइया

खसिया पड़िया जाबे।

भेसे गिये शेषे काँदिबे हाय

किनारा कोथाय पाबे!

(मैं सूर्य और चन्द्रको गूंथकर हार पहनूंगा, आकाश अङ्कित करके उसका वस्त्र पहनूंगा। देखो जरा उधर भी, सुनहरे बादलोंके अलस दल सूर्यकी कनक-किरणोंको चूमकर इस तरह शिथिल हो गये हैं कि वे अपने ही शरीरका भार नहीं संभाल सकते हैं। और उधर, मानो गोधुलि भी विवश हो रही है, क्योंकि देखो न, पूरबकी ओर उसकी खुली हुई वेणीका अन्धेरा छा गया है और पश्चिम ओर उसका सुनहरा आंचल खुल २ कर गिरा जा रहा है। कभी मुझे ऐसा मालूम होगा कि सुनहरे मेघ मेरी ही सलिल-राशिपर टूट-टूटकर गिर रहे है, —दूर मेरे ही पैरोंके नीचे। मैं व्याकुल होकर अपने शत शत बाहुओंको फैलाकर जितना ही उन्हें पकड़नेके लिये जाऊंगा, वे मेरी पकड़में न आवेंगे। यह देखकर आकाशके तारोंको आश्चर्य होगा। वे रातभर पानीके भीतरके तारोंकी ओर हेरते रहेंगे। वे यह न समझ सकेंगे कि ये पानीके तारे कहांसे आये, वे अपनी छायाको चूमने चलेंगे, यह मैं स्नेहकी दृष्टिसे देखता रहूंगा। मेरे दोनों तट कैसे श्याम हो रहे हैं!—इनमें कहीं कहीं फूल खिल जायेंगे। लहरियां इन फूलोंके पास खेलनेके लिये आवेंगी और एक-एक इन्हें चूमकर भाग जायंगी। तब मारे शर्मके कुसुम-कुमारी सिहर उठेगी,—उसी समय अपना
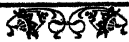
मुंह फेर लेगी,—अन्तमें लज्जाके आवेषमें अवश होकर झड़ जायगी। हाय! बहती हुई वह जलमें रोती फिरेगी, फिर उसे किनारा कहां मिलेगा?)

यह कविकी कविता-माधुरी है। इस कल्पनामें वह ओज नहीं जो उनकी पहलेकी पंक्तियोंमें है। पहले अन्धकार दूर हुआ, हृदयके अन्तर्पट पर प्रतिभाकी किरण गिरी, फिर क्रमशः उसकी प्रखरता इस तरह बढ़ती गई कि विश्वभरका उसने ग्रास कर लिया—उसके उद्दाम वेग—प्रखर गतिमें विश्वका हृदय-स्पन्द द्रुततर होता गया, फिर उसमें लालसाकी सृष्टि हुई, लालसाकी ही उत्पत्ति कविके हृदयमें नई नई सृष्टियोंके बीज बोती है। क्योंकि, किसी भी सृष्टिके पहले हम लालसा या इच्छाको ही पाते हैं। यदि लालसा न हो, यदि इच्छा न हो तो सृष्टि भी नहीं हो सकती। यह बात शास्त्रीय है। इधर कवितामें भी हमें यही क्रम मिलता है। प्रतिभा उर्वरा भूमि है और लालसा है बीज। इस बीजके पड़ने पर जो अंकुर उगता है, पूर्वोद्धृत पद्यमें उसका रूप हम देख लेते हैं, वह अंकुर की ही तरह कोमल है और उसी की तरह सुन्दर और मृदुल। और लालसाकी प्रथम सृष्टिमें जो रूप हमें देखनेको मिलता है, वह आदि रसका ही रूप है और सृष्टि की सार्थकताको 'आदि' के द्वारा बड़ी ही खूबीसे सिद्ध करता है। कविकी लहरियां अपने तट परके खिले हुए फूलोंको चूमकर भाग जाती हैं और उनका यह अभिसार—यह प्यार, नारी-स्वभावकी परिधिमें रहनेके

कारण कुसुम-कामिनीसे नहीं देखा जाता—वे लज्जासे सिहर उठती है और फिर चिरकालके लिये, अपने प्यारे वृक्षका आश्रय छोड़, झड़ जाती है—अन्तमें सलिल-राशि पर निरुपाय बह जाती है—उसे कहीं किनारा नहीं मिलता। इस सृष्टिमें महाकवि रवीन्द्रनाथने आदि या शृंगारकी सृष्टि किस खूबीसे करके, कुसुम-कामिनीके निरुपाय बह जानेमें इसका वियोगान्त अन्त करते हैं। यह बातें कविता—शिल्पियोंके लिये ध्यान देने योग्य हैं। महाकविकी इस क्षुद्र सृष्टिमें अनन्त सृंगार है और उसका अवसान भी होता है अनन्त वियोगमें। कुसुम-कामिनीके उद्धारके लिये फिर तट नहीं मिलता, उसे किनारा नहीं मिलता। उसका सच्चा प्रेम नायिका-लहरियोंके एक क्षणिक चुम्बनसे ही मुरझा जाता है और साथ ही वह भी मुरझाकर झड़ जाती है और वहां बह जाती है जहांसे फिर तट पर लगनेकी कोई आशा नहीं। कितनी सुन्दर सृष्टि है, छोटी और सुसम्बन्ध—महान!

रवीन्द्रनाथ अपने सौन्दर्यका अनुभव दूसरोंको भी कराते हैं। वे उन्हें पुकार-पुकार कर कहते हैं—

आजिके प्रभाते भ्रमरेर मत
बाहिर हइया आय,
एमन प्रभाते एमन कुसुम
केनोरे सुकाये जाय।
बाहिरे आसिया ऊपरे बसिया

केवलि गाहिबि गान,
तबेसे कुसुम कहिबे रे कथा
तबेसे खुलिये प्राण ।
अति धीरे धीरे कुटिबे दल,
बिकसित होये उठिबे हास,
अति धीरे धीरे उठिबेअ ाकाशे
लघु पाखा मेली खेलिबे वातासे
हृदय खुलानो, आपनाभु लानो,
पराणमातानो वास ।
पागल होइया माताल होइया
केवलि धरिबि रहिया रहिया
गुन् गुन् गुन तान ।
प्रभाते गाहिबि, प्रदोषे गाहिबि,
निशिथे गाहिबि गान,
देखिया फुलेर नगन माधुरी,
काछे काछे शुधु वेड़ाबि घुरि,
दिवा निशि शुधु गाहिबि गान ।
थर थर करि कांपिबे पाखा
कोमल कुसुमे रेणुते माखा,
आबेगेर भरे दुलिया-दुलिया
थर-थर करि कांपिबे प्राण ।
केवलि उड़िबि केवल बसिबि

कभुवा मरम माझारे पाशिबि,
आकुल नयने केवलि चाहिबि
केवलि गाहिबि गान।
अमृत-स्वपन देखिबि केवल
करिबिरे मधुपान!
आकाशे हासिबे तरुण तपन,
कानने छुटिबे वाय,
चारि दिके तोर प्राणेर लहरी
उथलि-उथलि जाय।
वायुर हिल्लोले झरिबे पल्लव
मर मर मृदु तान,
चारि दिक होते किसेर उल्लासे
पाखीते गाहिबे गान!
नदी ते उठिबे शत शत ढेउ,
गाबे तारा कल-कल,
आकाशे आकाशेउ थलिबे शुधु
हरषेर कोलाहल।
कोथाओ बा हासी, कोथाओ बाखेला,
कोथाओ बा सुख गान,
माझे बोसे तुइ बिभोर होइया,
आकुल पराणे नयन मुदिया
अचेतन सुखे चेतना हाराये
करिबिरे मधुपान।"

(आज इस प्रभातमें भ्रमरकी तरह तू भी निकल कर यहां आ जा। इस तरहके प्रभातमें, इस तरहके कुसुम भला क्यों सूख जाते हैं? तू बाहर निकल आ, यहां ऊपर बैठकर बस गाते रहना, उस कुसुमसे तेरी बात चीत तभी होगी—तभी वह तेरे सामने अपने प्राणोंके दल खोलेगा। बहुत धीरे धीरे उसके दल खुलेंगे, तब उसकी हंसी भी विकसित हो जायगी, तब हृदयको खोल देने वाली—अपनेको भुला देने वाली—प्राणों को मस्त कर देने वाली सुगन्ध बहुत ही धीरे आकाशकी ओर चढ़ेगी—अपने छोटे छोटे पंख फैलाकर हवाके साथ खेलती फिरेगी। पागल हो कर—मतवाला हो कर, रह रहकर तू केवल गुन् गुन्-स्वरोंमें तान अलापेगा। तू प्रभातके समय गायेगा, प्रदोषके समय गायेगा, निशीथके समय गायेगा। फूलोंकी नग्न माधुरी देखकर तू उनके आस ही पास चक्कर मारता रहेगा और दिन-रात केवल तान छेड़ता रहेगा। कोमल फूलोंकी रेणु लिपटाये हुए तेरे पङ्ख थर-थर कांपते रहेंगे। इसके साथ आवेगकी निर्भयतापर झूम २ कर तेरे प्राण भी थर-थर कांपते रहेंगे। तू उड़ता रहेगा, फूलों पर बैठता फिरेगा, कभी मर्ममें पैठ कर व्याकुल दृष्टिसे हेरता रहेगा और अपनी तान छेड़ेगा। अमृतके स्वप्नों पर तेरी दृष्टि अटकी रहेगी। तू केवल सदा मधुपान ही करता रहेगा। जब तक आकाशमें तरुण सूर्यका उदय होगा—वनोंमें वायु प्रवाहित हो चलेगी तब मुझे ऐसा मालूम होगा कि तेरे
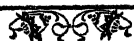
चारों ओर जीवनकी लहरें उथल-पुथल मचाती हुई बही चली जा रही हैं। जब हवाकी हिलोरोंमें पल्लव मर्मर-स्वरसे मृदु तान अलापने लगेंगे और न जाने किस उच्छ्वासके आदेशमें पक्षी गाने लगेंगे—नदियोंमें कितनी हीं लहरें उठेंगी और कल कल स्वरसे अपनी रागिनी गायेंगी—एक आकाशसे दूसरे आकाशमें केवल हर्षका कोलाहल उमड़ता रहेगा—कहीं हास्य की रेखाएं खिचेंगी—कहीं क्रीड़ा-कौतुक होगा—कहीं सुखके सङ्गीत उठेंगे—तू उनके बीचमें विह्वल होकर बैठा हुआ अपने आकुल प्राणोंसे, आंखें मूदकर, उस अचेतन सुखमें अपनी चेतना खोकर, सबका मधु पीता रहेगा।)

अपने हृदयके साथ हृदय मिलानेके लिये महाकवि सम्पूर्ण विश्वको इन पंक्तियों द्वारा निमन्त्रण भेज रहे हैं। वे मधुकर के साथ उसकी उपमा देकर मधुकरकी तरह उसे भी सम्पूर्ण पुष्प प्रकृतिका आनन्द लूटनेके लिये बुला रहे हैं। यह हृदय कितना विस्तीर्ण हो गया है, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। हृदयका विस्तार सम्पूर्ण विश्व-प्रकृति तक फैल जाता है। यह इतना बड़ा विस्तार है कि इसका वर्णन महाकविके ही मुखसे सुनिये—

"बारेक चोये देखो आमार मुख पाने,
उठेछे माथा मोर मेघेर माझ खाने।
आपनि आसि ऊषा शियरे बसि धीरे,
अरुण कर दिये मुकुट देन शिरे।

निजेर गला होते किरण-माला खुलि,
दितेछे रवि-देव आमार गले तुलि।
धुलिर धूलि आमि रयेछि धूलि परे
जेनेछि भाई बोले जगत चराचरे।"

(जरा मेरे मुंहकी ओर भी देखो। देखो—मेरा मस्तक मेघोंके बीचमें जाकर लगा है। वहां ऊषा आप आकर धीरे धीरे मेरे सिरहाने पर बैठ कर अरुण करोंका मुकुट मेरे सिर पर रख रही हैं। अपने गलेसे किरणोंकी माला खोलकर भगवान भास्कर उसे मेरे गलेमें डाल रहे हैं। यों तो मैं धूलकी धूल हूं—धूल ही पर रहता भी हूं, परन्तु विश्व और चराचरके दर्शन मुझे अपने भाईके रूपमें हुए हैं।)

इन पंक्तियोंमें कविके स्वरूपका पूर्ण परिचय मिल जाता है। उसका विशाल हृदय अपनी पहली क्षुद्र सीमाको तोड़कर किस तरह विश्व-ब्रह्माण्डकी व्याप्तिसे मिल कर एक हो जाता है, इसका इन इतनी ही पंक्तियोंमें यथेष्ट उदाहरण है। उसका उन्नत ललाट मेघोंको स्पर्श कर लेता—उनसे भी ऊंचा यदि कोई स्थान है तो वहां भी उसकी गतिको कोई बाधा नहीं पहुंचती। इधर धूलिकी धूलि होकर वह छोटेसे भी छोटा बन जाता है। वह महान भी है और क्षुद्र भी है। यदि विशालताकी पराकाष्ठा तक पहुंचानेके लिये कविने क्षुद्रताको छोड़ दिया होता तो उसके यथार्थ हृदयोद्गारको समालोचक व्यर्थ की आत्म-प्रशंसा और अहंकार कहकर कलङ्कित भी कर सकते

थे, क्योंकि क्षुद्र विशालका एक अङ्ग ही तो है। रेणुसे अलग कर देने पर विश्व-ब्रह्माण्डका अस्तित्व स्वीकार करना हास्यास्पद नहीं तो और क्या होगा? अस्तु कविकी व्याप्ति विराटमें भी है और स्वराटमें भी। यह प्रतिभादेवीके कृपा-कटाक्षका ही फल है कि पहले जिस हृदयमें अन्धकारका साम्राज्य था आज वह विश्वके महान आकाश और क्षुद्र कण तकमें व्याप्त होकर उन्हें प्रभा-पुलकित देख रहा है। आज उच्च और नीच, विश्वके सम्पूर्ण पदार्थोंमें उसका अपना ही दर्पण लगा हुआ है जिनमें वह अपने ही स्वरूपके दर्शन कर रहा है। न वह महानको देख कर डरता है और न क्षुद्रको देखकर उससे घृणा करता है। वह महानमें भी और क्षुद्रमें भी।
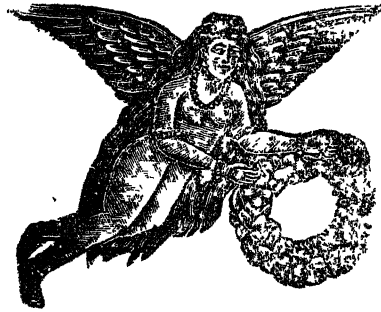
स्वदेश-प्रेम ।

कवियोंका हृदय स्वभावतः बड़ा कोमल होता है। वे दूसरोंके साथ सहानुभूति करते करते इतने कोमल हो जाते हैं कि किसी भी चित्रकी छाया उनके हृदयमें ज्योंकी त्यों पड़ जाती है, उन्हें इसके लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। यह उनका स्वाभाविक धर्म ही :बन जाता है। सांसारिक व्यवहारमें जितने प्रकारके विकारोंकी सृष्टि हो सकती है उनकी सख्या ९ से अभी तक अधिक नहीं हो पाई। इन्हीं ९ प्रकारके विकारोंका विश्लेषण करके साहित्यमें ९ रसोंकी सृष्टि की गई है। इन नव रसोंके नायक कवि वही होते हैं जो इस रसायन शास्त्रके पारदर्शी कहलाते हैं। नव रसोंके समझने और उन्हें उनके यथार्थरूपमें दर्शानेकी शक्ति जिसमें जितनी ज्यादा है, वह उतना ही बड़ा कवि है। जिस समयसे देश पराधीनताके पिंजड़ेमें वन-विहंगमकी तरह बन्द कर दिया गया है, उस समय से लेकर आजतककी उसकी अवस्थाका दर्शन, उससे सहानुभूति, उसकी अवस्थाका प्रकटीकरण आदि उसके सम्बन्धके जितने काम हैं,इनकी सीमा कवि-कर्मकीपरिधिके भीतर ही समझो

जाती है । क्योंकि, प्रकृतिका यथार्थ अध्ययन करनेवाला कवि ही यदि देशकी दशाका अध्ययन न करेगा तो फिर करेगा कौन ?—लल्लू बजाज और मैकू महतो ?

महाकवि रवीन्द्रनाथने केवल दूसरे विषयोंकी उत्तमोत्तम कविताओंकी रचनामें ही अपना सम्पूर्ण काल नहीं बिताया, उन्होंने देशके सम्बन्धमें भी बड़ी मर्म-स्पर्शनी कविताएं लिखी हैं। उनकी इस विषयकी कविताओंमें एक खास चमत्कार यह है कि वर्त्तमान समयके कवियशः प्रार्थी होकर ही कविता लिखनेका दुस्साहस करनेवालोंकी तरह; उनकी कवितामें कहीं हाय-हायका नाम-निशान भी नहीं रहता, किन्तु वह उनकी दूसरी कविताओंकी ही तरह सरस, मर्मस्पर्शनी और भावमयी होती हैं ; दूसरे भारतीयता क्या है और किस राहपर चलनेसे देशका भविष्य उज्वल होगा—कैसे उसे अपनी पूर्व अवस्थाको प्राप्ति हो सकेगी, यह भी महाकविने अपनी देश-विषयकी कविताओंमें बड़ी निपुनताके साथ अङ्कित कर दिखाया है। आदर्श उनका वही है जो आर्य-महर्षियोंका था और पथ-प्रदर्शन भीवही जो वेद और शास्त्रोंका है। कवित्व का कवित्व, उपदेशका उपदेश और भारतीयताकी भारतीयता ।—

"नयन मुदिया सुनिनु, जानिना,
कोन अनागत वरषे
तव मंगल-शङ्ख तुलिया
बाजाय भारत हरषे !

डुबाये धरार रण-हुंकार
भेदि बणिकेर धन-झंकार
महाकाश-तले उठे ओंकार
कोनो बाधा नाहीं मानी !
भारतेर श्वेत-हृदि-शतदले
दांड़ाये भारती तव पद्तले
संगीत ताने शून्ये उथले
अपूर्व महावाणी !
नयन मूंदिया भावीकाल पाने
रहिनु, सुनिनु निमिषे
तव मंगल-विजय-शङ्ख
बाजिछे आमार स्वदेशे !"

(आँखें बन्द करके मैंने सुना, हे विश्वदेव, न जाने किस अनागत वर्षमें, तुम्हारा मंगल-शङ्ख लेकर भारत आनन्दपूर्वक बजा रहा है। संसारके संग्राम-हुंकारको प्लावित करके बणिकोंके धन-झंकारको भेदकर भारतके ओंकारकी ध्वनि महाकाश की ओर बढ़ रही है, वह कोई बाधा नहीं मानती। भारतके हृदय-श्वेत-शतदल पर, तुम्हारे पैरोंके नीचे भारती खड़ी हैं; उसके संगीतके शून्य-पथमें एक अपूर्व महावाणी उमड़ रही है। मैंने आँखें मूंदकर भविष्य समयकी ओर देखा, सुना,—मंगल-घोषसे भरा हुआ हमारे देशमें तुम्हारा विजय-शङ्ख बज रहा है!)

देशपर महाकविने जो कुछ कहा है, उसमें भारतीयताकी ही
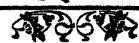
गन्ध मिल रही है। वे देशको विपथगामी होनेसे बचा रहे हैं, वे उसके मंगलके लिये किसी ऐसे उपायकी उद्भावना नहीं करते जो भारतके लिये एक नवीन और उसकी प्रकृतिके बिलकुल खिलाफ हो। वे उसे उसी मार्गपर उठाये रखना चाहते हैं जिसपर रहकर उसने महामनीषी ऋषियोंको उत्पन्न किया था। वे यदि चाहते तो अपनी ओजस्विनी कविता द्वारा देशको अपने इच्छानुकूल मार्गपर, अथवा विदेशके किसी क्रांतिकारी भावपर चला सकते थे। परन्तु उन्होंने देशकी नाड़ी पकड़कर उसे वह दवा नहीं दी जो किसी विदेशीने अपने देशको रोग-मुक्तिके लिये उसे दी है। रवीन्द्रनाथ भारतके ओंकारको वर्णनामें उसे किस उपायसे सर्वविजयी सिद्ध करते हैं, इसपर ध्यान दीजिये। उनके ओंकार-नादसे संसारका संग्राम-हुंकार प्लावित हो जाता है। इस प्लावनमें अशान्ति नहीं, शांति है। यह बिना अस्त्रोंकी लड़ाई और सत्यकी विजय है। इस ओंकार-नादसे धनिकोंका धन-दर्प भी चूर्ण हो जाता है। इसीका मंगल-घोष महाकवि भविष्यके पथपर अग्रसर होकर सुनते हैं। इससे सूचित है, भविष्यमें रवीन्द्रनाथ इसी ओंकारके विजय शब्दको भारतीय आकाशमें गूंजते हुए सुन रहे हैं, अतएव वे भारतको उसी रूपमें देखना चाहते हैं जिस रूपमें उसे सुसज्जित करनेके लिये महर्षियोंने युगोंतक तपस्या की थी।

भारतके सम्बन्धमें रवीन्द्रनाथका यह गीत बहुत ही प्रसिद्ध है—

"आमि भूवन-मनोमोहिनी
आमि निर्मल सूर्यकरोज्वल धरणी
जनक-जननी-जननी !
नील-सिन्धुजल-धौत चरण तल,
अनिल-विकम्पित श्यामल अंचल,
अम्बर-चुम्बित भाल हिमाचल
शुभ्र-तुषार-किरिटिनी !
प्रथम-प्रभात-उदय तव गगने,
प्रथम साम-रव तप तपोवने
प्रथम प्रचारित तब वन-भवने
ज्ञान-धर्म कत काव्य-काहिनी
चिर-कल्याणमयी तुमि धन्य,
देश-विदेशे वितरिछ अन्न,
जाह्नवी यमुना विगलित-करुणा,
पुण्य पीयूष-स्तन्य वाहिनी !"

इसका अर्थ खुलासा है। पाठकोंको इसके समझनेमें कोई दिक़्क़त न होगी।

रवीन्द्रनाथ देशकी कल्यान-कामना करते हुए परमात्मासे जिन शब्दोंमें प्रार्थना करते हैं, उससे उनके हृदयकी छिपी हुई मर्म-पीड़ाके साथ उनके प्रांजल विश्वासका एक बहुत ही भाव-मय चित्र पाठकोंके सामने अंकित हो जाता है। देशकी दीन-ताका अनुभव कितने गहरे पैठकर रवीन्द्रनाथ करते हैं और

उसके स्वरूपकी पहचान करा देनेके लिये अपने अक्षय शब्द-भाण्डार कैसे कैसे अर्थव्य और अजेय शब्दास्त्रोंका प्रयोग करते, यह भी पाठकोंके लिये एक ध्यान देनेकी बात है। रवीन्द्रनाथ उपदेशकके आसनपर बैठकर, यह करो—यह न करो, कहकर उसपर उपदेशोंकी बौछार नहीं करते। वे कविके ही शब्दोंमें जो कुछ कहते हैं, कहते हैं—

"अन्धकार गर्त थाके अन्ध सरीसृप,
आपनार ललाटेर रतन-प्रदीप
नाहीं जाने नाहीं जाने सूर्यालोक-लेश!
तेमनि आंधारे आछे यई अन्ध देश
हे दण्ड विधाता राजा,—ये दीप्त रतन
पराये दियेछे भाले ताहार यतन
नाहीं जाने, नाहीं जाने तोमार आलोक!
नित्य बहे आपनार अस्तित्वेर शोक
जनमेर ग्लानि! तव आदर्श महान
आपनार परिमापे करि खान खान
रेखेछे धूलिते! प्रभु, हेरिते तोमाय
तुलिते ना होय माया ऊर्द्ध्व पाने हाथ!
जे एक तरणी लक्ष लोकेर निर्भर
खण्ड खण्ड करि ताहे तरिबे सागर?"

(अन्धा सांप अन्धेरे गढ़ेमें रहता है। उसे अपने ही मस्तकके रत्न-प्रदीपका हाल नहीं मालूम। सूर्यके प्रकाशका भी

उसे कोई ज्ञान नहीं। इसी तरह, हमारा यह देश भी अन्धेरेमें पड़ा हुआ है। हे दण्डविधाता! हे महाराज! जो दीप्त रत्न उसके मस्तक पर तुमने लगा दिया है, उसका आदर-यत्न करना वह नहीं जानता, न उसे तुम्हारे प्रकाशका ही कोई ज्ञान है! वह सदा अपने अस्तित्वका शोक-भार ढोया करता है,—अपने जन्मके लिये रोया करता है! तुम्हारे महान आदर्शको अपनी बुद्धिके दायरेके अन्दर रख, उसने उसके टुकड़े बना डाले हैं और उन्हें धूलमें डाल रक्खा है! हे प्रभु! यह सब उसने इसलिये किया है कि तुम्हें देखनेके लिये उसे कहीं ऊपरकी ओर नज़र न उठानी पड़े। कितनी बड़ी भूल है। जिस नावपर चढ़ कर लाखों मनुष्य पार हो सकते हैं, वह उसके टुकड़े बनाकर समुद्रको पार करना चाहता है!)

इस अन्योक्तिसे रवीन्द्रनाथ देशको बहुत बड़ा उपदेश दे रहे हैं। परन्तु यह उपदेश वे उपदेशक बनकर नहीं दे रहे, वे कविके भावोंमें ही उसकी आँखें खोल रहे हैं! सांप अंधेरे गढ़ेमें पड़ा है। यहां सांप देश है और अंधेरा गढ़ा अज्ञान। उसके मस्तक पर मणि है, अर्थात् हर एक मनुष्यके भीतर अनादि और अनन्त शक्तिका भाण्डार है—उसके भीतर साक्षात् ब्रह्म विराजमान हैं। यह बात अर्थशास्त्रकी ओरसे भी पुष्ट होती है। देशमें जितना अन्न होता है, उससे देश अपनी शक्तिको इतना बढ़ा सकता है कि फिर संसारके सब देश यदि एक ओर होकर उससे लड़ें तो-भी उसे जीत नहीं सकते। एकवार इन पंक्तियोंके लेखकसे एक

अर्थशास्त्रके पारङ्गत विद्वान्‌से बातचीत हुई थी। उन्होंने पहले दूसरे देशोंका हाल कहा। फिर पश्चिमी देश भारतके साथ क्यों मैत्री नहीं करते, इसका अर्थशास्त्र-संगत एक कारण बतलाया और इसे अपनी सबल युक्तियों द्वारा पुष्ट भी किया। फिर उन्होंने कहा, लड़ाईमें रसदसे जितना काम होता है—लड़ाईके समय रसद्‌की जितनी आवश्यकता है, उतनी न गोलीकी है—न बारूद्‌की,—न मशीनगणोंकी है—न हवाई जहाजोंकी। भूखके मारे जब पेटमें चूहे कलाबाजियां खाने लगेंगे तब बन्दूकमें संगीन चढ़ाकर दिन भरमें पचास मीलका डबल-मार्च कैसे किया जायगा? सारी करामात रसद्‌की है। भारतमें जितना अन्न पैदा होता है उससे भारत अपनी रक्षा और दूसरोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये चार करोड़ फौज सब समय तैयार रख सकता है। पाठक, ध्यान दीजिये भारत सदाके लिये—सब समय मैदानेजङ्ग-पर डटे रहनेके लिये चार करोड़ सेनाकी पीठ ठोकता है। अब उसकी शक्तिका अन्दाजा आप सहज ही लगा सकते हैं। अस्तु! इसकी पुष्टि तब और हो जाती है जब वे कहते हैं, जिस नावपर से लाखों मनुष्य पार होते हैं, उसका तख्ता-तख्ता अलग करके यह समुद्रको पार करना चाहता है। भारतके बहुमत, सम्प्रदाय विभाग, संघशक्तिके कट-छँटकर टुकड़ोंमें बट जानेपर रवीन्द्र-नाथ व्यङ्ग कर रहे हैं, और इसके भीतर जो शिक्षा है, वह स्पष्ट है कि अब 'अपनी डफली और अपना राग' छोड़ो—यह 'अब' ढाई चावलोंकी खिचड़ी अलग पकानेका समय नहीं है, इससे

देशकी नाव समुद्रसे पार नहीं जा सकेगी,—देशके पैरोंकी बेड़ियां नहीं कट सकेंगी ।

आगे चलकर आप अपने अक्षय तूणीरसे बड़े बड़े बिकराल अस्त्र निकालते हैं । इनका संधान देशके उन साधुओं पर किया जाता है जो मुफ्त ही का धन हजम कर जाया करते हैं और काम जिनसे कुछ भी नहीं होता । मन्दिरके विशाल मञ्चपर कुछ मंत्र कहकर देशके उद्धारका द्वार खोलने वाले इन बगुला-भगत साधुओंको आपकी उक्तिसे करारी चोट पहुंचती है । इससे उनके दुराचारोंको भी कोई चोट पहुंचती है या नहीं, यह हम नहीं कह सकते हैं—

"तोमारे शतधा करि क्षुद्र करि दिया
माटीते लुटाय जारा तृप्त सुप्त हिया
समस्त धरणी आजि अवहेला भरे
पा रखेछे ताहादेर माथार ऊपरे ।
मनुष्यत्व तुच्छ करि जारा सारा बेला
तोमारे लइया सुधु करे पूजा खेला
मुग्ध भाव भोगे,—सेइ बृद्ध शिशुदल
समस्त विश्वइ आजि खेलार पुत्तल !
तोमारे आपन साथे करिया सम्मान
जे खर्ब वामनगण करे अपमान
के तादेर दिबे मान ? निज मंत्र स्वरे
तोमारेइ प्राण दिते जारा स्पर्द्धा करे
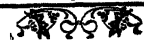
के तादेर दिबे प्राण? तोमारे ओजारा
भाग करे, के तादेर दिबे ऐक्य धारा?

(हे ईश्वर! तुम्हारे सैकड़ों टुकड़ोंमें बटे हुए जो लोग तुम्हारे ही छोटे-छोटे स्वरूप हैं—जो लोग मिट्टीपर लोटते हैं और उसीमें जिन्हें तृप्ति मिलती है और आनन्दसे वहीं सो जाते हैं, आज अवज्ञापूर्वक सम्पूर्ण संसार उनका सिर कुचल रहा है,—उन्हें ठोकरें लगा रहा है, जो लोग अपनी मनुष्यताको तिलाञ्जली देकर, करते तो हैं तुम्हारी पूजा की बात, परन्तु वास्तवमें तुमसे बच्चोंका ऐसा खेल किया करते हैं,—भोग ही जिनका भाव है और उसीमें जो लोग मुग्ध रहते हैं;वे वृद्ध होते हुए भी शिशु हैं—वे आज सम्पूर्ण विश्वके खिलौने हो रहे हैं! हे ईश्वर! सर्वाकृति वामन होते हुए भी जो लोग तुम्हें अपने ही बराबर बतलाते हैं, ऐसा कौन है जो उन्हें सम्मान दे सके अपने ही मन्त्रके उच्चारणसे जो लोग तुम्हारे लिये अपने प्राणोंको निछावर कर देनेका स्पर्द्धा करते हैं, ऐसा कौन है जो जीवनका संचार करे? जो लोग तुम्हारे भी टुकड़े कर डालते हैं, कहो, उन्हें कौन एकताकी रीति बतलाये?

पूर्वोद्धृत पंक्तियोंमें महाकविने भारतके धर्मध्वजियों और उनके विचारोंकी खूब धूल उड़ाई है! आगे भारतकी वर्त्तमान परिस्थितिमें जो लोग कराह रहे हैं, उनके सम्बन्धमें लिखते हैं—

"आमरा कोथाय आछि कोथाय सुदूरे
दीपहीन जीर्ण भीत्ति अवसाद-पुरे

भग्न गृहे ; सहस्रेर भ्रूकुटिर नीचे
कुब्ज पृष्ठे नतशिरे ; सहस्रेर पीछे
चलियाछि सहस्रेर तर्जनो-संकेते
कटाक्षे कांपिया ; लइयाछि सिर पेते
सहस्र शासन-शास्त्र ; संकुचित-काया
कांपितेछि रचि निज कल्पनार छाया
सन्ध्यार आंधारे बसि निरानन्द घरे
दीन आत्मा मरितेछे शत लक्ष्य डरे !
पदे पदे त्रस्त चिते होय लुण्ठ्यमान
धूलितले, तोमारे जे करि अप्रमाण !
जेनो मोरा पितृहारा धाई पथे-पथे
अनीश्वर अराजक भयार्त्त जगते !"

(हमलोग कहां हैं ?—दूर—बहुत दूर—उस नगरका नाम है विषाद—उसीके एक जीर्ण मन्दिरमें,—जिसकी दीवारें पुरानी हो गई हैं,—जहां एक दीप भी नहीं जल रहा !—वहीं हजारों मनुष्यों की कुटिल भौंहोंके नीचे कुब्जेकी तरह—सिर झुकाये हुए,—हजारों मनुष्योंके पीछे २ प्रभुत्वकी तर्जनीके इशारेपर उनके कटाक्षसे कांप-कांपकर हम चल रहे हैं ;—हमारी देह संकुचित हो गई है,—हम अपनी ही गढ़ी हुई कल्पनाकी छाया देखकर कांप रहे हैं,—सन्ध्याके अंधेरेमें, निरानन्द-गृहमें बैठी हुई हमारी दीन आत्माएं लाखों विपत्तियोंकी शङ्का कर-करके जी दे रही हैं। पग-पगपर हमारा जी कांप उठता है—हम धूलमें
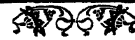
लोटने लगते हैं—तुम्हें हम अप्रमाणित भी तो करते हैं! बिना बापका अनाथ बच्चा जिस तरह गली-गली मारा-मारा फिरता है, उसी तरह हम भी इस अनीश्वर अराजक और भयार्त संसारमें मारे मारे फिरते हैं!

रवीन्द्रनाथकी इस उक्तिसे हमें अपने वर्त्तमान देश-दशाका बहुत अच्छा ज्ञान हो जाता है। महाकविके चरित्र-चित्रणमें जो खूबी है—उनकी वही खूबी भावोंके व्यक्त करनेमें भी पाई जाती है। वे एक निर्लिप्त फोटोग्राफरकी तरह फोटो नहीं उतारते; उस चित्रके सुख और दुःखसे अपनी हृदय-वीणाको इस तरह मिला देते हैं कि वह चित्रको अपनी सम्पूर्ण समवेदना गाकर सुनाया करती है। यही उनके चित्रणकी स्वर्गीय ज्योति है—यही उनकी महत्ता है। देशके वर्त्तमान नग्न-ताण्डवका रूप खींचकर वे उसके सामने एक आदर्श भी रखते हैं। इस आदर्श की रचना महाकवि स्वयं नहीं करते, वे उसे वेदान्तकी अमृत वाणी सुनाते हैं—कहते हैं—

"एकदा ए भारतेर कोन वन तले
के तुमी महान प्राण, कि आनन्द बले
उच्चारि उठिले उच्चे—"सुनो विश्वजन,
सुन अमृतेर पुत्र जतो देवगरा
दिव्यधाम वासी, आमि जेनेछि ताँहारे,
महान्न पुरुष जिनी आँधारेर पारे
ज्योतिर्मय; ताँरे जेने, तार पाने चाही

मृत्युरे लंघिते पार, अन्य पथ नाहीं !"
आर वार ए भारते के दिबेगो आनी
से महाआनन्दमय, से उदात्त बाणी
संजीवनी, स्वर्गे मर्त्ये सेई मृत्युंजय
परम घोषणा, सेई एकान्त निर्भय
अनन्त अमृत वानी !
रे मृत भारत !
सुधु सेई एक आछे नाहीं अन्य पथ !

(हे महामनीषो ! तुम कौन हो ?—एक समय भारतके किसी अरण्यकी छायामें किस आनन्दके उच्छ्वासमें आकर तुमने यह उच्चारण किया था ?—"हे विश्वके मनुष्यो ! हे दिव्य धामके रहनेवाले अमृतके पुत्र देवताओ ! सुनो ; उस महापुरुषको हमने जान लिया है—वे ज्योतिर्मय पुरुष अन्धकारके उस पार रहते हैं ; उन्हें जानकर उनकी ओर दृष्टि करके तुम मृत्युकी सीमाको पार कर सकते हो, और दूसरा मार्ग नहीं है ।" हे महर्षि ! वह महा आनन्दमयी—जीवन-संचार करने वाली—उदात्त वाणी,—स्वर्ग और मर्त्यके बीचमें मृत्युके जीतनेकी वह परम घोषणा,—अनन्तकी वह निर्भय अमृत वार्त्ता और कौन देगा ? अरे मृत भारत ! तेरे लिये वही एक मार्ग है, और कोई पथ नहीं है ।)

प्राणोंमें बिजलीकी स्फूर्ति भर देनेवाली, मुरदोंमें भी जान डाल देनेवाली, हृदयके सुप्त तारोंमें झङ्कारको तीव्र कम्पन ध्वनि भर देनेवाली अपनी ओजस्विनी कवितामें, उसी विषयको लेकर महाकवि फिर कहते हैं—

"ए मृत्यु छेदिते होबे, एई भयजाल,
एई पुञ्ज-पुञ्जीभूत जड़ेर जञ्जाल,
मृत आवर्जना ! ओरे जागितेई होबे
ए दीप्त प्रभात काले, ए जाग्रत भवे,
एई कर्मधामे ! दुई नेत्र करि आँधा
ज्ञाने बाधा, कर्मे बाधा, गति पथे बाधा,
आचारे विचारे बाधा करि दिया दूर
धरिते होइबे मुक्त विहंगेर सुर
आनन्दे उदार उच्च ! समस्त तिमिर
भेद करि देखिते होइबे ऊद्‌र्ध्व सिर
एक पूर्ण ज्योतिर्मये अनन्त भुवने !
घोषणा करिते होबे असंशय मने—
"ओगो दिव्यधामवासी देवगण जतो
मोरा अमृतेर पुत्र तोमादेर मतो ।"

(इस मृत्यु का उच्छेद करना होगा—इस भयपाशका कृतान्त करना होगा—यह एकत्र हुई जड़की राशि—मृत निस्सार पदार्थ दूर करना होगा। अरे—इस उज्वल प्रभातके समय, इस जाग्रत संसारमें, इस कर्मभूमिमें, तुझे जागना ही होगा। दोनों आँखोंके रहते भी वे फूटी है; यहां ज्ञानमें बाधा है, कर्मोंमें बाधा पड़ रही है, चलने फिरनेमें भी बाधा है और आचार-विचार ? वे भी बाधामें बंधे हुए हैं! इन सब बाधाओंको पार करना होगा और आनन्दपूर्वक उदार उच्च कण्ठसे मुक्त विहङ्गोंका स्वर अलापना

होगा। सम्पूर्ण तिमिर-राशिका भेद करके अनन्त भुवनोंमें एकमात्र ऊर्द्ध्व सिर उस पूर्ण ज्योतिर्मयीको देखना होगा। चित्तकी सारी शंकाओंको दूर करके घोषणा कर—"हे दिव्य-धामवासी देवताओ! तुम्हारी तरह हम भी अमृतके पुत्र हैं!"

महाकवि वर्त्तमान पश्चिमी सभ्यतापर कटाक्ष कर रहे हैं—

"शताब्दीर सूर्य आजि रक्तमेघ माझे
अस्त गेलो,—हिंसार उत्सवे आजि बाजे
अस्त्रे अस्त्रे मरणेर उन्माद-रागिनी
भयङ्करी! दयाहीन सभ्यता-नागिनी
तुलेछे कुटिल फण चक्षेर निमिषे!
गुप्त विष-दन्ततार भरी तीव्र विषे
स्वार्थे स्वार्थे बेधेछे संघात लोभे-लोभे
घटेछे संग्राम;—प्रलय-मंथन-क्षोभे
भद्र वेशी बर्बरता उठियाछे जागी
पङ्कशय्या होते! लज्जा-शरम तेयागी
जाति-प्रेम नाम धरि प्रचण्ड अन्याय!
धर्मेरे भासाते चाहे बलेर वन्याय
कवि-दल चीत्कारिछे जागाइया भीति
श्मशान-कुक्कुर देर काड़ाकाड़ी-गीति!"

(रक्तवर्ण मेघोंमें आज शताब्दियोंके सूर्य—अस्त हो गये। आज हिंसाके उत्सवमें, अस्त्रोंकी झनकारके साथ ही साथ, मृत्युकी भयङ्कर उन्माद-रागिणी बज रही है। निर्भय सभ्यता-

नागिनी अपने विषवाले दांतोंमें तीखा जहर भरकर क्षण-क्षणमें अपना कुटिल फन खोल रही है। स्वार्थके साथ अस्वार्थका संघात हो रहा है,—लोभके साथ लोभका संग्राम मचा हुआ है। मथकर प्रलयको ला खड़ा करनेके उद्दाम रोषसे, भद्रवेशिनी बर्बरता अपनी पङ्क-शय्यासे जगकर उठी है, लाज-शर्मसे हाथ धो, जाति-प्रेमके नामसे प्रचण्ड अन्याय धर्मको अपने बलकी बाढ़में बहा देना चाहता है। कवियोंका समूह पञ्चमस्वरमें श्मशान-श्वानोंकी छीना-झपटीके गीत अलाप रहा है और लोगोंमें भयका संचार कर रहा है।)
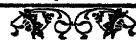
शताब्दियोंके सभ्यता सूर्यको पश्चिमी रक्तवर्ण मेघोंमें अस्त करके, पश्चिमी सभ्यताका जो नग्न चित्र महाकविने इन पंक्तियोंमें दिखलाया है, वह तो पूरा उतरा ही है; इसके अलावा महाकवि की साहित्यिक बारीकियों पर भी यहां एकाएक ध्यान चला जाता है। उनकी इस उक्तिमें जितनी स्वाभाविता आ गई है, उतनी ही उसमें कवित्व-कलाकी विभूति भी है। रक्तवर्ण मेघोंमें सभ्यता-सूर्य अस्त होते हैं। एक तो स्वभावतः सूर्यके अस्त होनेपर मेघ लाल-पीले देख पड़ते हैं, दूसरे मेघोंकी रक्तिम आभा पश्चिमी सभ्यताके संग्राम-वर्णनकी साहित्यिक छटाको और बढ़ा देती है, क्योंकि, संग्राम या रजोगुणका रंग भी लाल है—इसी संग्राम या रजोगुणमें शताब्दियोंके सभ्यता-सूर्य अस्त हो गये हैं—अब वह उज्वल प्रकाश नहीं है। अब ललाई मात्र रह गई है। इसके बाद है रात्रिका अंधकार—तमोगुण!

जातीय संगीतोंके गानेवाले कवियोंकी उपमा रवीन्द्रनाथने मरघटके कुत्तोंसे क्यों दी, इसका विस्तार पूर्वक वर्णन आगे चलकर इस तरह कहते हैं—

"स्वार्थेर समाप्ति अपघाते। अकस्मात्
पूर्ण स्फूर्ति माझे दारुण आघात
विदीर्ण विकीर्ण करि चूर्ण करे तारे
काल-झंझा-झङ्कारित दुर्योग आंधारे।
एकेर स्पर्द्धारे कभू नाहीं देय स्थान
दीर्घकाल निखिलेर विराट विधान।
स्वार्थ जतो पूर्ण होय लोभ-क्षुधानल
तत तार बेड़े उठे,—विश्व धरातल
आपनार खाद्य बोली ना करी विचार
जठरे पूरिते चाय!—बीभत्स आहार
बीभत्स क्षुधारे करे निर्दय निलाज।
तखन गर्जिया नामे तप रुद्र बाज।
छुटियाछे जाति-प्रेम मृत्युर सन्धाने
बाही स्वार्थ-तरी, गुप्त पर्वतेर पाने।"

(स्वार्थकी समाप्ति अपघातमें होती है—एकाएक स्वार्थीकी जान जाती है। जब वह अकड़-अकड़कर,—सीना तानकर चलने लगता है, तब उसके पापके घड़े पर बैठता भा है समयका पुरज़ोर झपेड़ा) और वह फूटकर चूर-चूर हो जाता है। (काल-झंझाके दुर्योगान्धकारमें दारुण आघात उसकी परिपूर्ण स्फूर्तिको एकाएक चूर्ण-विचूर्ण कर देता है।)

ईश्वरीय विधान किसी की स्पर्धाको चिरकाल एक सा नहीं रखता—किसीके यहां सब दिन घीके दिये नहीं बलते। और स्वार्थका पेट जितना ही भरता जाता है, उतना ही वह पैर भी फैलाता जाता है और उसकी भूख भी उतनी ही बढ़ती जाती है। इसीलिये वह, अपना भक्ष्य समझकर, बिना विचारके ही, तमाम संसारको अपने पेटमें डाल लेना चाहता है!—बीभत्स भोजन उसकी बीभत्स क्षुधाको और निर्दय, और निर्लज्ज बनाता जाता है। तभी उसके मस्तक पर, हे विश्वेश। तुम्हारा रुद्र बज्र गरजकर टूट पड़ता है। अतएव, यह (पश्चिमी) जाति-प्रेम, अपनी ही मृत्युकी तलाशमें, स्वार्थकी नाव खेता हुआ गुप्त पर्वतकी ओर चला जा रहा है।)

पश्चिमके जिन रक्तिमाभ मेघोंका उल्लेख पहले किया जा चुका है, उनके सम्बन्धमें आप कहते हैं—

"एई पश्चिमेर कोने रक्त-राग-रेखा
वहे कभू सौम्य-रश्मि अरुणेर लेखा
तब नव प्रभातेर! ए सुधू दारुण
सन्ध्यार प्रलय-दीप्ति! चितार आगुन
पश्चिम-समुद्र-तटे करिछे उद्गार
विष्फुलिंग—स्वार्थ दीप्त लुब्ध सभ्यतार
मशाल होइते लये शेष अग्नि-कणा
एई श्मशानेर माझे शक्तिर साधना
तव आराधना न हे, हे विश्व-पालक!

तोमार निखिल-प्लावी आनन्द-आलोक
होय तो लुकाये आछे पूर्व-सिन्धु तीरे
बहु धैर्य नम्र स्तब्ध दुःखेर तिमिरे
सर्वरिक्त आश्रु सिक्त दैन्येर दीक्षाय
दीर्घकाल—ब्राह्ममुहूर्तेर प्रतीक्षाय!"

(पश्चिमके कोनेमें लाल लाल यह जो रेखा खिचीं हुई है, इससे तुम्हारे नवप्रभातके सौम्यरश्मि सूर्यको सूचना नहीं होती। यह तो भयङ्करी सन्ध्याकी प्रलय-दीप्ति है। देखो न, समुद्रके पश्चिमी तटमें चिताकी आगसे चिनगारियाँ निकल रही हैं और इस चितामें आग कैसे लगी? स्वार्थसे जलती हुई लोभी सभ्यताकी मशालकी अन्तिम चिनगारी इस पर पड़ी थी। इस श्मशानमें शक्तिकी जो आराधना हो रही है वह तुम्हारी आराधना नहीं है। हे :विश्वपालक! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको बहा देने वाला तुम्हारे आनन्दका मधुर प्रकाश कहीं समुद्रके पूर्वी-तटमें छिपा होगा—दुःखके साथ अन्धकारमें बड़े धैर्यके साथ नम्र रहकर दीर्घकालसे दीनताको दीक्षामें आँसू बहाता हुआ, सर्वस्व गवांकर वह 'ब्राह्म मुहूर्त' की प्रतीक्षा करता होगा।)

यहाँ इन पंक्तियोंमें महाकविके निर्मल हृदय-पट पर स्वदेश-प्रेमका वही मनोहर चित्र खिंचा हुआ देख पड़ता है जिसके चारुता-सम्पादनमें पहलेके ऋषियों और महर्षियोंने तपस्या करते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन पार कर दिया था। महाकविके हृदयमें ईर्ष्या और द्वेषकी एक कणा भी नहीं देख पड़ती। वे

अपनी हृदयहारिणी वर्णनामें किसी द्वेष-भाव-मूलक कविताकी सृष्टि नहीं करते। वे संसारको वही भाव देते हैं जो उन्हें अपने पूर्वजोंसे उत्तराधिकारके रूपमें मिले हैं। जिस तरह वे दूसरी जातियोंको जाति-प्रेमके नाम पर खूनकी नदियाँ बहाते हुए देखकर घृणापूर्ण शब्दोंमें याद करते हैं, उसी तरह, अपने देशके उद्धारके लिये भी, वे उसे क्रान्तिका पाठ नहीं पढ़ाते वे तो उसे, प्रतिभा और साहस, धर्म और विश्वास, दैव और पुरुषकार की सहायतासे, निरस्त्र होकर भी संसारके समक्ष वीर्यका उदाहरण रखनेके लिये उपदेश देते हैं। यही भारतीयता है और यही उन्होंने अपने जीवनमें परिणत कर दिखाया है। उन्होंने अनुभव किया है, संसारके अन्तस्थलमें सर्वव्यापी परमात्माका ही स्थान है, अतएव वे विरोधाभावके द्वारा संसारमें अपनी युक्तिके बढ़ानेका उपदेश कैसे दे सकते हैं? इस सम्बन्धमें वे स्वयं कहते हैं—

तोमार निर्द्दोष काले
मुहुर्तेई असम्भव आसे कोथा होते
आपनारे व्यक्त करी आपन आलोते
चिर-प्रतिष्ठित चिर-सम्भवेर वेशे!
आछो तुमि अन्तर्यामी ए लज्जित देशे,
सबार अज्ञात सारे हृदये-हृदये
गृहे-गृहे रात्रि-दिन जागरुक होये
तोमार निगूढ़ शक्ति करितेछे काज
आमी छाड़ीनाई आशा ओगो महाराज!"
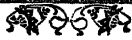
(जब तुम्हारा निर्दिष्ट समय आ जाता है तब असम्भव चिरकालके आकांक्षितकी तरह चिर-सम्भवके रूपमें, मुहूर्तमें ही अपनेको व्यक्त करके न जाने कहांसे आ जाता है ! हे अन्तर्यामिन् ! इस लज्जित देशमें भी तुम हो । सबके अज्ञात भावसे हृदय-हृदयमें—गृह-गृहमें जाग्रत रहकर तुम्हारी ही गूढ़ शक्ति अपना कार्य कर रही है । अतएव, हे महाराज ! मैंने आशा नहीं छोड़ी ।)

देखिये आप महाकविके भावको, देखिये उनके हृदयके विश्वास को और उनकी भारतीयताको । यहां महाकवि आम तौर पर ईश्वरकी ही इच्छाको इच्छा और उन्हींके कर्मको कर्म मान रहे हैं । उनकी अलक्षित शक्तिके द्वारा ही, समयके आनेपर, असम्भव सम्भवके आकारमें बदल जाता है और उनकी इच्छाकी पूर्ति होती है, इससे बड़ी भारतीयता हमारी समझमें तो और कुछ नहीं हो सकती । क्योंकि, अवतारवादकी जड़ एकमात्र यही भाव है । असम्भवको सम्भव कर दिखानेकी प्रचण्ड शक्तिको लेकर जो पैदा होते हैं—जिनके आविर्भावसे संसारमें एक युग-परिवर्तनसा हो जाता है, भारतमें उन्हें ही अवतारकी आख्या दी जाती है । महाकवि भी इस आशयकी पुष्टि करते हैं ।

इस तरह, स्वदेशके सम्बन्धमें आपने और भी अनेक कविताओंकी रचना की है । वङ्गलक्ष्मी, मातार आह्वान, हिमालय, क्षान्ति यात्रा-संगीत प्रार्थना, शिला-लिपि, भारत-लक्ष्मी, से आमार जननी रे, नववर्षेर गान, भिक्षायां नैव नैव च—आदि कितनी ही कविताएं महाकविने देशभक्तिके उच्छ्वासमें आकर

लिखि हैं और इनमें सभी कविताएं महाकविकी वर्णन-विशेषता प्रकट कर देती हैं। आपके 'प्राचीन भारत' पद्यका कुछ अंश हम पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ उद्धृत कर चुके हैं। लोकाचार या देशाचारको आप किन शब्दोंमें याद करते हैं, जरा यह भी सुन लीजिये,—बहुत छोटी कविता है, नाम है 'दुइ उपमा'।

"जे नदी हाराये स्रोत चलिते ना पारे,
सहस्र शैवास्य-दाम बांधे आसि तारे;
जे जाति जीवनहारा अचल असाड़
पदे-पदे बांधे तारे जीर्ण लोकाचार!
सर्व जन सर्व क्षण चले जेई पथे,
तृण-गुल्म सेथा नाहीं जन्मे कोनो मते—
जे जाति चलेना कभू, तारि पथ परे
तन्त्र मन्त्र संहितार चरण न सरे!

जिस नदीका प्रवाह रुक जाता है, वह फिर बह नहीं सकती है। फिरतो सेवारकी हजारों जञ्जीरें उसे आकर जकड़ लेती हैं। इसी तरह जिस जातिके जीवनका नाश हो गया है—जो जाति अचल और जड़वत हो गई है, उसे भी, पद-पदपर, जीर्ण-लोकाचार जकड़ लेते हैं। जो आम रास्ता है—जिसपर लोग सब समय चलते-फिरते हैं, उसमें कभी घास नहीं उग सकती। इसी तरह, जो जाति कभी चलती नहीं, उसके पथपर तन्त्र, मंत्र और संहिताएं भी पङ्गु हैं।)

कंधेमें भिक्षाकी झोली डालकर जो लोग राज्य-प्राप्तिकी

आशासे दूसरोंका दरवाजा खटखटाया करते हैं; उनके प्रति विदेशियोंका कैसा भाव है, इसके सम्बन्धमें भी महाकविकी उक्ति सुन लिजिये। परन्तु पहले हम इतना कह देना चाहते हैं कि रवीन्द्रनाथ अपनी कवितामें व्यक्तिगत आक्षेप करके किसीका दिल नहीं दुखाना चाहते। वे जो कुछ कहते हैं, अपने स्वदेशको ही लक्ष्य करके कहते हैं—

"जे तोमारे दूरे राखि नित्य घृणा करे
हे मोर स्वदेश,
मोरा तारी काछे फिरी सम्मानेर तरे
परी तारी वेश!
विदेशी जानेना तोरे अनादरे ताई
करे अपमान,
मोरा तारी पिछे थाकी योग दिते चाई
आपन सन्मान!
तोमार जे दैन्य मातः ताई भूषा मोर
केन ताहा भूली,
परधने धिक् गर्व, करी कर जोड़
भरी भिक्षा-झुली!
पुण्य हस्ते शाक अन्न तुली दाव पाते
ताई जेनो रुचे,
मोटा वस्त्र बुने दाव यदि निज हाते
ताहे लज्जा घुचे!"
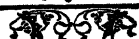
सेई सिंहासन यदि अञ्चलटी पातो
करो स्नेह-दान
जे तुमारे तुच्छ करे, से आमारे मातः,
कि दिबे सम्मान !"

(ऐ मेरे स्वदेश! जो मनुष्य तुम्हें दूर रखकर नित्य ही तुमसे घृणा किया करता है, हम सम्मानके लिये उसीके .वेशमें उसके पास चक्कर लगाया करते हैं! विदेशी तुम्हें (तेरी महत्ता को) नहीं जानते, इसलिये उनमें निरादरका भाव है और वे तुम्हारा अपमान किया करते हैं, और हम तुम्हारी गोदके बच्चे उनके पीछे लगे हुए, उनके इस कार्यकी सहायता किया करते हैं! मां! तुम्हारी दीनता ही मेरे वस्त्र और आभूषण हैं, इस बातको क्यों मैं भूलूं—मां! दूसरेके धनके लिये अगर गर्व हो तो उस गर्वपर धिक्कार है। हाथ जोड़कर हम भीखकी झोली भरते हैं! मां! अपने पवित्र हाथोंसे तुम जो रोटियां और साग —थालीपर रख देती हो,ईश्वर करे,उसी भोजनमें हमारी रुचि हो, और अपने हाथोंसे तुम जो मोटे कपड़े बुन देती हो, उन्हींसे हमारी लज्जा-निवृत्ति हो—हमारी देह ढक जाय। अपने स्नेहका दान करनेके लिये यदि तुम अपना अञ्चल बिछा दो, तो हमारे लिये वही सिंहासन है; मां! तुम्हें जो तुच्छ समझता है वह हमें कौनसा सम्मान दे देगा?)

महाकविका संकल्प ।

महाकवि रवीन्द्रनाथकी कविताओंका एक भाग अलग है। उसमें कुछ कविताएं संकल्पके नामसे एकत्र की गई हैं। इन कविताओंमें एक विचित्र सौन्दर्य है। सावनकी सिंची लताओंकी तरह इनकी सुकुमार आभा महाकविके मनोरम काव्योद्यानकी और भी शोभा बढ़ाती हैं। इनसे उनके पल्लवित काव्यकुञ्जोंमें एक दूसरी ही श्री आ गई है। महाकविके संकल्पके रूपमें जो भाव आये हैं, उनसे उनकी सुकुमार कल्पना-प्रियताके साथ उनकी कोमल भावनाओंकी भी यथेष्ट सूचना मिलती है।

कविके संकल्पके जाननेकी :आवश्यकता भी है। वह क्या चाहता है, उसका उद्देश क्या है। वह अपने जीवनका प्रवाह किस ओर बहा ले जाना चाहता है, उसकी भावनाओंमें किसी खास भावकी अधिकता क्यों हुई, ये सब बातें हमें अच्छी तरह तभी मालूम हो सकती हैं जब कवि स्वयं उनमें अपनी कवित्वकलाकी ज्योति भरे और उन्हें आईनेसे भी साफ, इतिहाससे भी सरल करके रक्खे।

महाकविका संकल्प क्या है, यह उन्हींके मुखसे सुनिये—

"संसारे सबाइ जबे साराक्षण शत कर्मे रत
तुइ सुधू छिन्नबाधा पलातक बालकेर मत

मध्याह्ने माठेर माझे एकाकी विषण तरुच्छाये
दूर-वनगन्धवह मन्दगति क्लान्त तप्त वाये
सारा दिन बाजाइली बाँशी !—अरे तुर उठ आजि
आगुन लगेछे कोथा ? कार शंख उठियाछे बाजि
जागाते जगत जने ? कोथा होते ध्वनिछे क्रन्दने
शून्यतल ? कोन अन्धकार माझे जर्जर बन्धने
अनाथिनी मागिछे सहाय ? स्फीतकाय अपमान
अक्षमेर वक्ष होते रक्त शोषि करितेछे पान
लक्ष मुख दिया ! वेदनारे करितेछे परिहास
स्वार्थोद्धत अविचार ! संकुचित भीत क्रीतदास
लुकाइछे छद्मवेशे ! ओइ जे दाँड़ाये नतशिर
मूक सबे,—म्लान मुखे लेखा सुधूशत शताब्दीर
वेदनार करुण काहिनी; स्कन्धे जतो चापे भार—
बहि चले मन्दगति जतक्षण थाके प्राण तार,—
तार परे सन्तानेरे दिये जाय वंश वंश धरि;
नाहीं भर्त्से अदृष्टेरे, नाहीं निन्दे देव तारे स्मरि
मानवेर नाहीं देय दोष, नाहीं जाने अभिमान,
सुधू दुटी अन्न खुँटी कोने मते कष्ट विनष्ट प्राण
रेखे देय बाचाइया ! से अन्न जखन केह काड़े,
से प्राणे आघात देयगर्वान्ध निष्ठुर अत्याचारे,
नाहीं जाने कार द्वारे दाँड़ाइबे विचारेर आशे,
दरिद्रेर भगवाने· बारेक डाकिया दीर्घ श्वासे
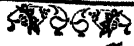
मरेसे नीरवे;—एइ सब मूढ़ म्लान मूक मुखे
दिते होबे भाषा, एई सब शान्त शुष्क भात बुके
ध्वनिया तुलिते होबे आशा; डाकिया बोलिते होबे—
मुहूर्त तुलिया सिर एकत्र दांड़ाव देखी:सबे !
जार भये तुमी भीतसे अन्याय भीरु तोमा चेये,
जखनि जागिबे तुमी तखनि से पलाइबे धेये;
जखनि दांड़ाबे तुमी सम्मुखे ताहार,—तखनिसे
पथ-कुक्कुरेर मत संकोचे सत्रासे जाबे मिशे;
देवता विमुख तारे, केहो नाहीं सहाय ताहार
मुखे करे आस्फालन, जानेसे हीनता आपनार
मने मने !—

(जब संसारमें, सब आदमी, सब समय, सैकड़ों कामोंमें लगे रहते हैं, तब भागे हुए बन्धनविहीन बालककी तरह,: दुपहर के समय, बीच मैदानमें, तरुकी विषादमग्न छायाके नीचे, दूर-दूरके जंगलोंसे सुगन्धको ढोकर ले आती हुई—धीमी—थकी और तपी हुई हवामें अकेला बैठा हुआ तूने खूब तो बांसुरी फूंकी; भला आज अब तो उठ। क्या तू नहीं जानता?—कहां आग लगी हुई है,—संसारके आदमियोंके जागनेके लिये किसका शङ्ख बज रहा है?—कहांके उठते हुए क्रन्दनसे आकाश ध्वनित हो रहा है,—किस अन्धेरेमें पड़ी बन्धनोंसे जकड़ी हुई अनाथिनी सहायताकी प्रार्थना कर रही है।अरे देख,—वह देख—पीन्नोनत-शरीर अपमान; अक्षमोंके वक्षसे:खून चूस-चूसकर, अपने लाखों

मुखोंसे पान कर रहा है !—स्वार्थसे उद्भूत हुआ अविचार वेद्-नाका परिहास कर रहा है !—भयसे सिकुड़ा हुआ गुलाम भेष बद्लकर छिप रहा है !—वह देख, सब-के-सब सिर झुकाये हुए खड़े हैं—किसीकी जबान भी नहीं हिलती !—और देख उनके म्लान मुखोंमें शत-शत शताब्दियोंकी वेद्नाकी करुण-कहानी लिखी हुई है !—उनके कन्धेपर जितना भी बोझ रक्खा जाता है, जबतक प्राण हैं, वे उसे धीरे-धीरे ढोये चलते हैं, और फिर यही बोझ वे अपनी सन्तानोंको वंश-परम्परागत अधिकारके रूपसे दे जाते हैं—न इसके लिये अपने भाग्यको ही कोसते हैं, न विधाताकी याद् करके उनकी निन्दाही करते हैं और न दूसरे मनुष्यको ही कोई दोष देते हैं ; अधिक और क्या, वे इसके लिये अभिमान करना भी नहीं जानते ; बस चार दाने चुनकर किसी तरह दुःखसे पिसे हुए प्राणोंको बचाये रक्खे हैं ! जब कोई उनका यह अन्न भी छीन लेता है—जब गर्वान्ध निष्ठुर अत्याचारी उन वैसे प्राणोंको भी आघात पहुंचाता है, तब उसे हाय इतना भी नहीं समझ पड़ता कि विचारकी आशासे कितने द्वारपर वह जाकर खड़ा होगा !—यह निश्चय है कि एक वह समय आता है जब दरिद्रोंके ईश्वरका एकवार स्मरण करके दीर्घ श्वासके साथ ही वह अपनी मानव-लीलाकी समाप्ति कर देता है। इन सब थके हुए—सूखे हुए—भग्न-हृदयोंमें शब्दोंकी प्रतिध्वनिके साथ आशाको जागृत करना होगा ; इन्हें पुकार-पुकारकर, कहना होगा—"जरा थोड़ी देरके लिये सिर ऊंचा करके एक साथ

सब खड़े तो हो जाओ। जिस भयसे इतना तुम डर रहे हो वह अन्याय तुमसे भी भीरु है। तुम जागे नहीं कि वह भागा। तुम उसके सामने खड़े हुए नहीं कि वह रास्तेके कुत्तेकी तरह संकोच और त्रासके मारे सिकुड़कर रह जायगा। उससे देवता भी विमुख हैं, उसका सहायक कोई नहीं, उसका यह जितना रोब-दाब है—जितनी बड़ी-बड़ी बातें वह मारता है, यह सब बस जबानी जमाखर्च है,—मनही मन वह अपनी हीनता—अपनी कमज़ोरियोंको खब समझता है।)

"कवि, तबे उठे एसो,—यदि थाके प्राण
तबे ताई लहो साथे,—तबे ताई आजि कर दान!
बड़ो दुःख बड़ो व्यथा,—सन्मुखे तो कष्टेर संसार
बड़ई दरिद्र, शून्य, बड़ो क्षुद्र, बद्ध अन्धकार
अन्न चाई, प्राण चाई, आलो चाई, चाई मुक्त वायु,
चाई बल, चाई स्वास्थ्य, आनन्द-उज्वल परमायु,
साहस विस्तृत वक्षपट! ए दैन्य माझारे, कवि,
एकवार निये एसो स्वर्ग होते विश्वासेर छवि!
एवार फिराब मोरे, लोये जाव संसारेर तीरे
हे कल्पने, रङ्गमयि! दुलायोना समीरे समीरे
तरङ्ग-तरंगे आर! भुलायो ना मोहिनी मायाय!
विजन विषाद-घन अन्तरेर निकुञ्जच्छायाय
रेखो ना बसाये आर! दिन जाय, संध्या होये आसे!
अन्धकारे ढाके दिशि निराश्वास उदास बातासे

निश्वसिया केंदे उठे वन! बाहिरिनु हेता होते
उन्मुक्त अम्बर तले, धूसर पुसर राजपथे,
जनतार माझ खाने! कोथा जाव, पान्थ, कोथा जाव,
आमी नहीं परिचित, मोर पाने फिरिया ताकाव!
बल मोरे नाम तव, आमारे कोरो ना अविश्वास!
सृष्टि छाड़ा सृष्टि माझे बहुकाल करियाछि वास
संगिहीन रात्रि दिन; ताइ मोर अपरूप वेश,
आचार नूतन तर; ताई मोर चक्षे स्वप्नावेश,
वक्षे ज्वले क्षुधानल!—जे दिन जगते चले आसी,
कोन् मां आमारे दिली सुधू एई खेलावार बांशी!
बाजाते बाजाते ताई मुग्ध होये आपनार सुरे
दीर्घ दिन दीर्घ रात्रि चले गेनु एकान्त सुदूरे
छाड़ाये संसार सीमा!—से बांशीते सिखेछि जे सुर
ताहारी उल्लासे यदि गीत शून्य अवसाद-पुर
ध्वनिया तुलिते पारी, मृत्युञ्जयी आशार संगीते
कर्म हीन जीवनेर एक प्रान्त पारी तरंगिते
सुधू मुहूर्तेर तरे, दुःख यदि पाय तार भाषा,
सुप्ति होते जेगे उठे अन्तरेर गभीर पिपासा
स्वर्गेर अमृत लागी,—तबे धन्य होबे मोर गान,
शत शत असन्तोष महागीते लभिबे निर्वाण।"

(कवि! तो फिर बैठे क्यों हो?—उठो-चलो;—तुम्हारे पास कुछ नहीं है?—प्राण?—प्राण तो हैं?—बस इतना ही

अपने साथ लेलो,—आज जरा अपने प्राणोंका दान तो करके देखो। देखो—यहां बड़ा दुःख है—बड़ी व्यथाएं हैं!—देखो अपने सामने जरा उस दुःखके संसारको—बड़ा ही दरिद्र है—शून्य है—क्षुद्र है—बड़ा ही क्षुद्र—अन्धकारमें बद्ध हो रहा है!—सुनो उसे अन्न चाहिये—प्राण चाहिये—आलोक चाहिये—खुली हवा चाहिये। और?—और चाहिये बल—स्वास्थ्य—आयु,आनन्दसे भरी,चमकीली और हृदय दृढ़,—साहस सुविस्तृत। इस दीनताके भीतर कवि! एकवार-बस एकवार स्वर्गसे विश्वासकी छवि उतार लाओ रंगमयि कल्पने! अब मुझे लौटा—संसारके तटपर ले चल—हवाके झोकोंमें, तरंगोंमें अब मुझे न झुला—अपनी मोहिनी मायामें अब मुझे न मोह— निर्जन और विषादसे गहरी अन्तस्थलको कुञ्ज·छायामें अब मुझे बैठा न रख। दिन बीत जाता है, शाम हो आती है; दिशाओंको अन्धकार ढक लेता है; आश्वास-तक-न-देखनेवाले उदास वायुमें सांस ले-लेकर वन रो उठता है! यहांसे खुले आकाशके नीचे, धूलि-धूसर फैले हुए राज-पथमें, जनताके बीच, मैं निकल गया। पथिक—ओ पथिक! कहां जाते हो? मुझसे तुम्हारा पहलेका कोई परिचय तो नहीं है—परन्तु सुनो, मेरी ओर जरा दृष्टि फेरो; मुझे अपना नाम तो बतलाओ—मुझपर अविश्वास न करो, मैं एक अजीब आदमी हूं—जान पड़ता है, सृष्टिसे अलग हूं, परन्तु बहुत दिन मैं इस सृष्टिमें रह भी चका हूं—दिनरात अकेला—बिना-साथी-का इसीलिये तो मेरा यह विचित्र वेश है,—नये ढंगके आधार हैं;
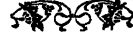
इसीलिये मेरी आँखोंमें स्वप्नका आवेश है, हृदयमें भूखकी ज्वाला उठ रही है। मां! तूने मुझे सिर्फ यह खेलनेकी वंशी क्यों पकड़ाई जिस दिन मैं संसारमें चला आया था। इसीलिये तो बजाता हुआ अपने स्वरसे मुग्ध होकर, दीर्घ दिन और दीर्घ रात्रि लगातार मैं चलता ही गया और एकान्तमें बहुत दूर संसारकी सीमा छोड़कर निकल गया। उस वंशीसे जो स्वर मैंने सीखा है, उसीके उच्छ्वाससे यदि गीत-शून्य इस अवसाद-पुरीको प्रतिध्वनित करके मैं जगा सका—मृत्युको जीतनेवाले आशाके संगीतोंसे यदि एक मुहूर्तके लिये भी कर्महीन जीवनके एक प्रान्तको मैं तरंगित कर सका—दुःखको यदि भाषा मिल गई—सुप्तिके भीतरसे यदि अन्तरकी प्रखर प्यास स्वर्गके अमृतके लिये जग पड़ी,—तो मेरा गान धन्य हो जायगा,—सैकड़ों असन्तोषोंको महागीतके द्वारा निर्वाणकी प्राप्ति हो जायगी।)

"कि गाहिबे, कि सुनाबे !—बल, मिथ्या आपनार सुख,
मिथ्या आपनार दुःख! स्वार्थमग्न जे जन विमुख
बृहत् जगत् होते जे कखनो सेखेनी बांचिते !
महाविश्व जिवनेर तरंगेते नाचिते नाचिते
निर्भये छुटिते होबे सत्येरे करिया ध्रुवतारा !
मृत्युरे करिना शङ्का ! दुर्दिनेर अश्रु जलधारा
मस्तके बड़िबे झरि—तारि माझे जाबो अभिसारे
तारकाछे, जीवन सर्वस्वधन अपिया छि जारे
जन्म जन्म धरी ! × × ×

× × × ×

× ×—तारी लागी रात्रि-अन्धकारे
चलेछे मानव-यात्री युग होते युगान्तर पाने
झड़-झंझा बज्रपाते, ज्वालाये धरिया सावधाने
अन्तर प्रदीप खानी ! × × ×

× × × ×

× × ×—छुटेछे से निर्भीक पराणे
संकट-आवर्तमाझे, दियेछे से विश्व-विसर्जन,
निर्यातन लयेछे से वक्ष पाती ; मृत्युर गर्जन
सुनेछे से संगीतेर मतो ! × × ×

× × × ×

हृतपिण्ड करिया छिन्न रक्तपद्म अर्घ्य-उपहारे
भक्ति भरे जन्मशोध शेष पूजा पूजियाछे तारे
मरणे कृतार्थ करि प्राण ! सुनियाछि तारी लागी
राजपुत्र परियाछे छिन्न कन्था विषम-विरागी
पथेर भिक्षुक ; × × ×

× × × ×

× ×—प्रिय जन करियाछे परिहास
अति परिचित अवज्ञाय ; गेछे से करिया क्षमा
नीरवे करुण नेत्रे—अन्तरे वहिया निरुपमा
सौन्दर्य प्रतिमा ! × × ×

× × ×—सुधु जानी से ताहारी महान
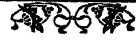
गम्भीर मंगल-ध्वनि सुना जाय समुद्रे समीरे,
ताहारि अंचल-प्रान्त लुटाईछे नीलाम्बर घिरे,
तारि विश्वविजयिनी परिपूर्ण प्रेम मूर्त्ति खानी
विकाशे परम क्षणे प्रियजन मुखे ! सुधू जानी
से विश्व-प्रियार प्रेमे क्षुद्रतारे दिया बलिदान
बर्ज्जिते होइबे दूरे जीवनेर सर्ब्ब असम्मान,
सम्मुखे दाड़ाते होबे उन्नत मस्तक उच्चे तुलि—
जे मस्तके भय लेखे नाई लेखा दासत्वेर धूलि
आंके नाई कलङ्क-तिलक ! ताहारे अन्तरे राखी
जीवन-कण्टक-पथे जेते होबे नीरवे एकाकी,
सुखे-दुखे धैर्य्य धरी, विरले मूछियां अश्रु आंखी,
प्रतिदिवसेर कर्म्मे प्रतिदिन निरलस थाकी
सुखी करी सर्ब्ब जने ! तार परे दीर्घ पथशेषे
जीवयात्रा-अवसाने क्लान्त पदे रक्त-सिक्त वेशे
उत्तरिव एक दिन श्रान्तिहारा शान्तिर उद्देशे
दुःखहीन निकेतने ! प्रसन्न वदने मन्द हेसे
पराबे महिमा लक्ष्मी भक्त कण्ठे वरमाल्य खानी,
कर पद्म परशने शान्त होबे सर्ब्ब-दुःख-ग्लानी
सर्ब्ब अमङ्गल ! लुटाइया रक्तिम चरण तले
धौत करि दिब पद आजन्मेर रुद्ध अश्रु जले।
सुचिर संचित आशा सम्मुखे करिया उद्घाटन
जीवनेर अक्षमता कांदिया करिबे निवेदन,
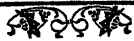
मागिबो अनन्त क्षमा ! होय तो घुचिबे दुःख-निशा,
तृप्त होबे एक प्रेमे जीवनेर सर्व्व प्रेम तृषा !"

(कवि तुम क्या गाओगे ?—क्या सुनाओगे ? यह गाना और सुनाना सब व्यर्थ है। बल्कि यह कहो कि अपने सुख और दुःख मिथ्या हैं। जो मनुष्य अपने स्वार्थमें पड़ा हुआ है, जो बृहत्त संसारसे विमुख है, उसने बचना नहीं सीखा ! महाविश्वकी जीवन-तरङ्गोंपर नाचते हुए, सत्यको ध्रुवतारा करके, निर्भय होकर हमें तेजीके साथ बढ़ना होगा। हम मृत्युकी शंका नहीं करते। हमारे दुर्दिनकी अश्रुजलधारा मस्तकपर झरती रहेगी और उसीके भीतरसे हमारा अभिसार उसके निकट जानेके लिये होगा जिसे हम हर जन्मसे अपना जीवन-सर्व्वस्व धन देते आ रहें हैं। × × × उसीके लिये, रातमें—अंधेरेमें, आंधी तूफान और बज्रपातमें भी मानव-यात्री अन्तर-प्रदीपको जलाकर उसे सावधानीसे पकड़े हुए एक युगसे दूसरे युगकी ओर चला जा रहा है। × × × वह संकटके आवर्तोंसे निर्भय होकर दौड़ा चला जा रहा है। उसने विश्वका विसर्जन कर दिया है, उसने हृदय खोलकर निर्यातन स्वीकार कर लिया है, उसने मृत्युके गर्जनको संगीतकी तरह सुना है। × × × अपने हृदय-पिण्डको छिन्न करके, रक्तपद्मकी तरह अर्घ्य और उपहारके रूपमें जीवनभरके लिये, भक्तिपूर्व्वक उसने उसकी अन्तिम पूजा की है—मृत्युके द्वारा अपने प्राणोंको कृतार्थ करके मैंने सुना है, उसीके लिये राजपुत्रने फटे कपड़े पहने हैं—विष-

थोंसे विरक्त होकर वह रास्तेका, भिक्षुक बन गया है। × × उसके प्रियजनोंने एक अत्यन्त परिचित अवज्ञाके द्वारा उसका परिहास किया है; परन्तु वह, उन्हें क्षमा करके, करुणापूर्ण नेत्रोंसे चुपचाप चला गया है—हृदयमें अपनी निरुपमा सौन्दर्य-प्रतिमाका ध्यान लेकर। × × × मैं तो बस इतना ही जानता हूं कि वह उसीकी महान मंगल-ध्वनि है जो समुद्रमें और समीरमें सुन पड़ रही है, नील अम्बरको घेरकर लोटता हुआ यह उसीके अञ्चलका छोर है, उसीकी, विश्वको जीत लेनेवाली, परिपूर्ण प्रेमकी मूर्ति, शुभ समयके आने पर अपने प्रियके मुखको विकसित कर देती है। मैं बस इतना ही जानता हूं कि उस विश्व-प्रियाके प्रेममें क्षुद्रताकी बलि देकर, जीवनके सम्पूर्ण अपमान को दूर हटाना होगा, उन्नत मस्तकको और ऊंचा करके सामने खड़ा होना होगा—उस मस्तकको उठाना होगा जिसमें भयकी रेखा नहीं खिंची—दासताकी धूलिने जिस पर कलङ्कका टीका नहीं लगाया। उसे ही अन्तरमें रखकर जीवनके कंटकाकीर्ण मार्ग पर चुपचाप अकेला जाना होगा,—सुख और दुःखमें धैर्य रखकर, एकान्तमें आंसू पोंछते हुए,—प्रति दिनके कर्मोंमें सब समय आलस छोड़ और सब आदमियोंको सुखी करके। इसके पश्चात् दीर्घ पथके अन्तमें जीवनकी प्रगतिकी समाप्ति होने पर, थके हुए पैरों और खूनमें डूबे हुए अपने वेशको लेकर, भ्रान्ति-हीन शांतिके उद्देश पर चलता हुआ एक दिन मैं उस स्थानमें पहुंचूंगा जहां दुःखका नाम भी नहीं है। प्रसन्नता पूर्वक मन्द

मन्द हंसती हुई महिमालक्ष्मी भक्तके कण्ठमें वरमाल्य डालेगी, जिसके कर-पद्मका स्पर्श करते ही सम्पूर्ण-दुःख, ग्लानि और अमङ्गल शांत हो जायंगे। उसके रक्तिम चरणों पर लोटकर मैं अपने जीवन भरके रुके हुए आंसुओंसे उसके पैर धो दूंगा। चिरकालसे संचित की हुई आशाको उसके सामने प्रकट करके मैं रो-रो कर अपने जीवनकी अक्षमताएं निवेदित करूंगा, और अनन्त क्षमा मांगूगा; सम्भव है, इससे मेरी दुःख-निशाका अवसान हो और एक ही प्रेमके द्वारा जीवनकी सब प्रकारकी प्रेम-तृष्णाएं तृप्त हों।)

कैसा अद्भुत संकल्प है। कितने ही दिनोंसे संचित किये हुए भावोंका भाण्डार, संकल्पके चित्रोंमें, पाठकोंको अमूल्य रत्न दे रहा है। महाकविके इस संकल्पमें, मनुष्य-जीवनका कर्तव्य, दीनोंकी दशाका वर्णन, उनके उत्थानका उपाय, नीचताका तिरस्कार, इन्हीं सब सांसारिक भावोंकी वर्णना की गई है। दीनोंकी दुर्दशाके साथ कविकी पूर्ण सहानुभूति पाई जाती है। परन्तु कविका यह भाव बदल जाता है। अन्तमें वह संसार छोड देता है। अपने गीतोंकी भीम गर्जनाके द्वारा पद्-दलित संसारको बार बार प्रतिध्वनित करके जगाना वह भूल जाता है। उसे यह सब अचिर, नश्वर और क्षणस्थायी जान पड़ता है। इस संसारसे उसकी विरक्ति हो जाती है। यहाँ बड़ोंमें भी वह स्वार्थ देखता है और छोटोंमें भी उसे वही शब्द सुन पड़ता है। वह इस क्षुद्र जगत्को पार कर जाता है।

जहां मृत्युको हृदयसे लगाने वाले परम प्रेमी विरागी संसारका त्याग कर चले जाते हैं—जहां महाराजा धिराज भी अपनी सुख-सम्पदाको छोड़कर अपने प्रियतमसे मिलनेके लिये चले जाते हैं और बज्रप्रहारको भी धैर्य पूर्वक सह लेनेके लिये तैयार रहते हैं, आंसुओंको पीकर प्रेमके उसी कंटकाकीर्ण पथको पार करनेके लिये कवि भी तैयार हो जाता है। परन्तु जिसके पास पहुंचनेके लिये वह इतना उद्यम करता है, वह है कौन?—सम्पूर्ण विश्वब्रह्माण्डकी सौन्दर्य-प्रतिमा—जिसके उद्देशमें कवि प्रेमके अगणित संगीतोंकी सृष्टि करके बहा देते हैं, आसमानमें जिसका आंचल लोटता है।

प्रश्न यह उठता है कि पहले तो कवि दीनोंकी दुर्दशाका दिग्दर्शन करता है,—उनके अपमानको दूर करने, उन मूकोंको भाषा देने, उनमें जीवन-संचार करनेका संकल्प करता है, वह कवि बनकर अपने स्वरसे संसारका एक प्रान्त तरङ्गित कर देनेके लिये इच्छा प्रकट करता है—फिर एकाएक उसे इस तरह उसी संसारसे विराग क्यों हो जाता है?

इसका उत्तर देनेसे पहले हम प्रासंगिक कुछ दूसरी बातें कहना चाहते हैं। इस इतने बड़े पद्यमें ऐसी सुन्दर अर्थ-संगति रखना रवीन्द्रनाथ जैसे कवित्वकलाके पारदर्शी महाकविका ही काम था। पहले रवीन्द्रनाथकी अद्भुत शब्द-श्रृङ्खला पर ध्यान दीजिये। एक एक भावकी लड़ी चालीस-चालीस पचास-पचास पंक्तियों तक बढ़ती ही चली गई है; और तारीफ यह कि

भाव कहीं छूटने-टूटने नहीं पाया। जान पड़ता है, शब्द और भाव उनके गुलाम हैं, इच्छामात्रकी देर होती है और वे हाथ बांधकर हाजिर हो जाते हैं। बहुतसे विद्वानोंकी राय है कि, कविताका सौन्दर्य यह है कि शब्द थोड़े हों और भाव अधिक और गहन; इस तरह कविताका सौन्दर्य ज्यादा खुलता है, जैसे बिहारीके दोहे। इस कथनमें सत्यकी छाया नहीं है सो बात नहीं। परन्तु कविताके सौन्दर्यकी व्याख्याके लिये एकमात्र इस कथनको ही सत्य मान लेना वैसी ही भूल होगी जैसी साकार और निराकारके झगड़ेमें अक्सर हुआ करती है। यह कोई बात नहीं कि सौन्दर्य विन्दुमें ही हुआ करता है। सिन्धु में नहीं। बल्कि यह कहना ठीक होगा कि विन्दुका सौन्दर्य अलग है, और सिन्धुका अलग। जो लोग शब्द-विन्दुमें कवित्व-सिन्धुके भर देनेको उच्चकोटिकी कविता बतलानेके आदी हो रहे हैं, उनसे हम विनयपूर्वक कहेंगे, भाई! आपकी उक्तिमें तर्कका विरोध होता है। क्योंकि विन्दुमें कभी सिन्धु समा नहीं सकता, हां विन्दुमें सिन्धुका चित्र भले ही पड़ जाय। आंखकी पुतलीपर संसारका एक बहुत बड़ा चित्र पड़ता है, इसलिये क्या कोई यह कह सकता है कि आंखमें संसार समा गया? वह तो ज्योंका त्यों बाहर ही रहता है, कभी किसीकी आंखका आपरेशन करके संसारका एक-आध टुकड़ा अबतक बाहर नहीं निकाला गया। विन्दुमें सिन्धुको भर देनेवाली बात-पर भी यही एतराज है। यह हम मानते हैं कि पत्थरके एक

जरासे टुकड़ेमें सौन्दर्यकी मात्रा बहुत हो सकती है; परन्तु इस तरह टुकड़ोंमें ही सौन्दर्य भरनेके लिये हम कवियोंको सलाह नहीं दे सकते। क्योंकि विन्दुमें सिन्धुकी छायाके पड़नेपर एक सौन्दर्य पैदा होता है और सिन्धुमें सुन्दर अगणित विन्दुओंको देखकर एक और सौन्दर्य। यह कोई बात नहीं कि सब समय थोड़ेमें ही बड़ेके दर्शन किये जायं और बड़ेमें असंख्य क्षुद्रोंके नहीं।

महाकवि रवीन्द्रनाथके इस पूर्वोद्धृत पद्यमें यदि कोई विन्दुमें सिन्धुकी छाया देखना चाहे तो उसे निराश होना होगा। उसमें वह आनन्द है जो सिन्धुमें अगणित विन्दुओंको देखकर होता है। अस्तु। पहले संसारके घोर उत्पीड़नको देखना, उत्पीड़नके यथार्थ मर्मको खोलना, उत्पीड़ितोंको उत्पीड़नके सामने लाकर खड़ा करना! उनके अगनित असन्तोषोंको अपने गीतके द्वारा निर्वाणको प्राप्ति कराना, तब स्वयं निर्वाणके पथपर निकलना और सत्यं शिवं सुन्दरंकी मूर्त्ति—अपनी निरुपमा सौन्दर्यमयी—से मिलना, इस क्रममें कैसी सुन्दर संगीत है, इसपर पाठक ध्यान दें। रवीन्द्रनाथ तबतक निर्वाणकी प्राप्ति के लिये नहीं निकलते जबतक सैकड़ों असन्तोषोंको उनके गीतों के द्वारा निर्वाणकी प्राप्ति नहीं हो जाती। इसमें सन्देह नहीं कि जहां आपने कविको सम्बोधन करके कहा है—क्या गाओगे—क्या सुनाओगे! कहो, हमारे ये सुख और दुःख मिथ्या हैं; जो स्वार्थमग्न है वह बृहत् संसारसे विमुख है—उसने बचना नहीं सीखा, वहां उनकी इन पंक्तियोंसे सूचित हो जाता है कि

उनके गीतोंसे सम्पूर्ण असन्तोषोंको निर्वाणकी प्राप्ति नहीं होती। यदि सम्पूर्ण असन्तोषोंको निर्वाण-लाभ हो गया होता तो आगे चलकर स्वार्थमग्न मनुष्योंको वृहत् संसारसे विमुख बतलाकर महाकवि एकाएक वैराग्य धारण न कर लेते। उन्हींकी पंक्तियोंसे सूचित है कि उनके वैराग्य धारन करनेसे पहले—निरुपमा सौन्दर्य-प्रतिमाके पास पहुंचनेसे पहले, संसारमें, असन्तोष और स्वार्थ, यथेष्ट मात्रामें, रह जाते हैं और उनके सुधारसे निराश अतएव विरक्त होकर ही मानों वे वैराग्यके पथपर आते हैं।

यह दोष नहीं है, किन्तु कलाकी एक उत्कृष्ट विभूति है। सम्पूर्ण असन्तोषोंको निवार्णकी प्राप्ति न कराना, इसमें कलाके साथ-साथ दर्शनकी पुष्टि होती है। कला इसमें वह है जिसमें मनुष्यके मनका चित्र दिखलाया है और दर्शन वह जिसमें सनातन सत्यकी पुष्टि। रवीन्द्रनाथ यह तो कहते ही नहीं कि पीड़ितों और लांछितोंके साथ उनको कोई सहानुभूति नहीं है। वे उनसे पूर्ण सहानुभूति रखते हैं, कितने ही असन्तोष निर्वाण या सन्तोषके रूपमें बदलते हैं—अनेकोंका सुधार हो जाता है। परन्तु स्मरण रहे इन अनेकोंका सुधार कुछ रवीन्द्रनाथको इच्छासे नहीं होता,—रवीन्द्रनाथ तो सुधारकी स्कीम मात्र पेश करते हैं—सुधारके गीत मात्र गाते हैं,सुधरते हैं लोग अपनी इच्छासे। 'शत शत असन्तोष महागीते लभिबे निर्वाण', महाकविका इस उक्तिमें शत शत (अनेक, किन्तु सब नहीं) असन्तोष जीवधारी बतलाये गये हैं। (Personified) और वे स्वयं ही निर्वाणको

प्राप्ति करते हैं, व्याकरणकी दृष्टिसे असन्तोष स्वयं कर्त्ता है और 'लभिबे—'लाभ कररेंगे' उसकी क्रिया, अतः मनुष्यरूपधारी सैकड़ों असन्तोष स्वयं ही निर्वाणकी प्राप्ति करते हैं उनके इस कार्यमें रवीन्द्रनाथका गीत सहायक मात्र है। जिस तरह बिना कारणके कर्त्ताकी कार्य-सिद्धि नहीं होती है, उसी तरह, यहां बिना महाकविके संगीतकी सहायताके असन्तोषोंको मुक्ति नहीं मिलती है। बस इतना ही श्रेय रवीन्द्रनाथको दिया जाता है। और कार्यकर्त्ता अपनी इच्छासे ही करता है—असन्तोष अपनी इच्छासे ही मुक्त होते हैं। उनकी व्यक्ति-गत स्वतंत्रता-पर महाकवि अधिकार प्राप्त करनेकी चेष्टा नहीं करते, इससे उन्होंने अपने विशाल शास्त्रज्ञानका परिचय दिया है, क्योंकि जिस तरह समष्टिगत आत्मा स्वतंत्र है, उसी तरह व्यक्तिगत आत्मा भी स्वतन्त्र है, और व्यक्तिको कुल क्रियाएं भी स्वतंत्र हैं। मनुष्य-मनकी प्रगतिके अनुकूल ही काव्य-चित्रमें भाषा-तूलिकाको संचालित करके, महाकविने कलाको विकसित कर दिया है और बहुतोंकी मुक्ति बतलाकर और बहुतोंको उसी अवस्थामें छोड़ उसी असन्तोषमें डालकर अपने शास्त्रोंको एक सच्ची व्याख्यासी कर दी है। सृष्टिमें किसी वीजका नाश नहीं होता। यदि सम्पूर्ण असन्तोष संसारसे गया होता तब तो असन्तोषके वीजका नाश ही हो गया था। इससे कवितामें एक बहुत बड़ी असंगति आ जाती। अन्सतोषको संसारमें पूर्ववत् प्रतिष्ठित रखकर, संसारकी क्षुद्रताको छोड़ विश्व-ब्रह्माण्डकी

सौन्दर्य-श्रीके पास कविका पहुंचना बहुत ही स्वाभाविक हुआ है। अब रही संसारसे उनके विमुख होनेकी बात, सो इसका वृतान्त उन्होंने स्वयंही लिखा है। संसारमें वही रह सकता है, जो अस्वार्थपर है, संकीर्ण है।

अपने संकल्प-समूहोंमें अशेषका चित्रण करते हुए महाकवि लिखते हैं—

"आवार आह्वान ?
जतो किछु छिलो काज संगो तो करेछी आज
दीर्घ दिन मान।
जागाये माधवी वन चले गेछे बहु क्षण
प्रत्यूष नवीन।
प्रखर पिपासा हानी पुष्पेर शिशिर टानी
गेच्छे मध्य दिन।
माठेर पश्चिम शेषे अपराह्न म्लान हेसे
होलो अवसान,
पर पारे उत्तरिते पा दियेछि तरणीते,
आवार आह्वान ?"

(फिर तुम मुझे बुलाते हो ? जितने मेरे काम थे, उन सबको तो मैंने समाप्त कर डाला—इस दीर्घ दिनके साथ साथ ! नवीन प्रभात तो माधवी-वनको जगाकर बहुत पहले ही चला गया है। फूलोंकी ओस चाटकर, उनमें प्रखर प्यास भरकर दुपहर भी चली गई है! प्रान्तरके अन्तिम पश्चिमांशमें, मलिन भावसे
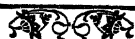
हँसकर पिछला पहर भी डूब गया है! इस समय, उस पार जानेके लिये मैंने नावपर पैर रक्खे ही और तुमने मुझे फिर बुलाया ?)

"नामे सन्ध्या तन्द्रालसा सोनार आंचल खसा
हाते दीप शिखा,
दिनेर कल्लोल पर टानी दिया झिल्ली स्वर
घन यवनिका!
ओपारेर कालो कुले काली घनाइया तुले
निशार कालिमा,
गाढ़ से तिमिरतले चक्षु कोथा डूबे चले
नाहीं पाय सीमा!
नयन पल्लव परे स्वप्न जड़ाइया धरे
थेमे जाय गान;
क्लान्ति टाने अङ्ग मम प्रियार मिनति सम
एखनो आह्वान ?"

(संध्या उतर रही है। नींदसे उसकी आंखे अलसाई हुई हैं, उसके सोनेका आंचल खुल-खुल कर गिर रहा है, उसके हाथमें प्रदीपकी शिखा कैसी शोभा दे रही है। झिल्लियोंके स्वरने दिनके कल्लोल पर एक घोर यवनिका खींच दी है! रातका अंधेरा उस पारके काले तटकी स्याहीको और गहरा कर देता है! उस गहरे अंधेरेमें आखें कहां डूबती चली जाती हैं, इसका कुछ ओर-छोर नहीं मिलता! आंखके पलकोंको स्वप्न जकड़े

लेता है, गाना भी रुक जाता है, प्रियाकी मिन्नतकी तरह क्लान्ति मेरे अङ्गोंको समेटती है, और तुम अब भी मुझे बुला रही हो ?)

"रे मोहिनी, रे निष्ठुरा ओरे रक्त-लोभातुरा
कठोर स्वामिनी,
दिन मोर दिनू तोरे शेषे निते चास हरे
आमार यामिनी,
जगते सबारी आछे संसार-सीमार काछे
कोने खाने शेष,
केनो आसे मर्मच्छेदि, सकल समाप्ति भेदि,
तोमार आदेश ?
विश्व जोड़ा अन्धकार सकलेरी आपनार
एकेलार स्थान,
कोथा होते तारो माझे विद्युतेर मतो बाजो
तोमार आह्वान ?"

(अयि मोहिनि—निष्ठुर—खूनकी प्यासी—मेरी कठोर स्वामिनि ! अपना दिन तो मैंने तुझे दिया अब मेरी रात भी तू हर लेना चाहती है ? संसारमें, संसारकी सीमाके पास, किसी जगह, सबकी समाप्ति है, तो फिर मर्मको छेदकर सब समाप्तियों का भेद करता हुआ तेरा आदेश मेरे पास क्यों आता है ? यह विश्व भरमें जुड़ा हुआ अंधेरा—यहां सबके लिये अपनी अकेली जगह अलग है, इस अंधेरेके भीतर भी बिजलीकी तरह तेरा आह्वान, कहांसे आकर झलक जाता है ?)

"दक्षिण समुद्र पारे, तोमार प्रासाद द्वारे
हे जाग्रत रानी,
बाजे ना कि सन्ध्या काले शान्त सुरे क्लान्त ताले
वैराग्येर वाणी ?
सेथाय कि मूक वने घुमाय ना पाखीगणे
आंधार शाखाय ?
तारागुली हार्म्य शिरे उठे ना कि धीरे धीरे
निःशब्द पाखाय ?
लता-वितानेर तले बिछाय ना पुष्प दले
निभृत शयान ?
हे अभ्रान्त शान्तिहीन, शेष होये गेलो दिन
एखनो आह्वान ?"

(दक्षिण समुद्रके उस पार, तुम्हारे महलके दरवाजे, ऐ मेरी जागती हुई रानी ! क्या शामके वक्त शान्त स्वर और क्लान्त तालमें वैराग्यकी वाणी नहीं बजती ?—क्या वहांके मूक वनोंकी अंधेरी शाखाओं पर पक्षी सोते नहीं ? तारे, चुपचाप पर मार कर, महलके सीस पर धीरे धीरे क्या वहां नहीं चढ़ते ?—लता वितानोंके नीचे, फूल-दल, क्या वहां एकान्त-शय्याको रचना नहीं करते ? ऐ शान्तिहीन आभ्रान्त ! दिन समाप्त हो चुका और तुम अब भी मुझे बुलाते हो ?)

"रहिलो रहिलो तबे आमार आपन सबे,
आमार निराला,

मोर सन्ध्या दीवालोक, पथ-चावा टुटी चोक
चले गांथा माला ।
खेया तरी जाक बोये गृह-फेरा लोक लोये
ओ पारेर ग्राम,
तृतीयार क्षीण शशि धीरे पड़े जाक खसि
कुटिरेर बामे !
रात्रि मोर, शांति मोर, रहिल स्वपनेर घोर
सुस्निग्ध निर्वाण,
आबार चलिनु फिरे बहि क्लान्त नत शिरे
तोमार आह्वान !
बोलो तबे कि बाजाबो फूल दिये कि साजाबो
तव द्वारे आज,
रक्त दिये कि लिखिबो, प्राण दिये कि :लिखिबो
कि करिबो काज ?
यदि आंखी पड़े ढुले, हलना हस्त यदि भूले
पूर्व निपुणता,
वक्षे नाहीं पाई बल, चक्षे यदि आसे जल
बेधे जाय कथा,
चेयोना को घृणा भरे करोना को अनादरे
मोर अपमान,
मने रेखे, हे निदये, मेने छिनु असमये
तोमार आह्वान !

सेवक आमार मत रयेछे सहस्र शत
तोमार दुआरे
ताहारा पेयेछे छुटी, घुमाये सकले जुटी
पथेर दुधारे।
सुधू आमि तोरे सेवी विदाय पाइते देवी
डाक क्षणे क्षणे;
बेछे निले आमारेई दुसह सौभाग्य सेई
बहि प्राणपणे!
सेई गर्वे जागि रब, सारा रात्रि द्वारे तव
अनिद्र नयान,
सेई गर्वे कण्ठ मम वहि वरमाल्य सम
तोमार आह्वान!"

(अगर इस तरह बुलाना ही तुम्हारा उद्देश है, तो यह लो, मेरा सब कुछ, मेरा निर्जन यहीं रहा; मेरा शामके दियेका उजाला, मेरी रास्तेपर लगी हुई दोनों आंखें, मेरी बड़े प्रयत्न की गुंथी हुई माला, सब कुछ रहा। घर-लौटे आदमियोंको लेकर, उसपारके गांवमें, खेवा जा रहा है—तो जाय, तीजका पतला चाँद कुटियाके बाईं ओर—धीरे धीरे टूटकर गिर रहा है—तो गिर जाय! मेरी रात, मेरी शान्ति, स्वप्नकी गहराई और वह मेरा बहुत ही शीतल निर्वाण, सब कुछ रहा! अब फिर मैं लौटा—थके और झुके हुए सीसपर तुम्हारा आह्वान लेकर। अच्छा तो अब बतलाओ, मैं क्या बजाऊं ?—तुम्हारे द्वारपर
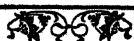
आज फूलोंसे क्या सजाऊं ?—अपना खून बहाकर उससे क्या लिखू ?—अपने प्राणोंका उत्सर्ग करके उससे क्या सीखू ? —क्या काम करूं ? अगर आंखें नींदसे मुंद जायँ, ढीला हाथ अगर पहलेकी निपुणता भूल जाय, अगर हृदयको बल न मिले, आँखोंमें आंसू आ जायँ, बात रुक जाय, तो मेरी ओर घृणासे न ताकना—अनादरकी दृष्टिसे मेरा अपमान न करना, ऐ निर्दये ! याद रखना, तुम्हारे असमयके आह्वानको भी मैंने मान लिया था। मुझ से सेवक तुम्हारे द्वारपर हजारों हैं, उन्हें छुट्टी मिल गई है, वे सब एकत्र हो रास्तेके दोनों ओर सो रहे हैं। देवि, तुम्हारी सेवा करके केवल मुझे ही छुट्टी नहीं मिलती, सभी समय मेरी पुकार होती है; अनेक सेवकोंमें तुमने मुझे ही चुन लिया है, इस दुरूह सौभाग्यकी रक्षा मैं दिलोजान से कर रहा हूं। इसी गर्वसे मैं तुम्हारे द्वारपर जागता रहूंगा, झपकियां भी न लूंगा, इसी गर्वसे मैं अपने कण्ठमें वरमाल्यसा तुम्हारे आह्वानको धारण करूंगा।)

"होहे, होबे, होबे जय		हे देवी, करिते भय,
होबो आमी जयी !
तोमार आह्वान-बाणी		सफल करिबो रानी,
हे महिमामयी।
कांपिबे न क्लान्त कर,		भागिबे ना कण्ठस्वर,
टुटिबे ना वीणा

नवीन प्रभात लागी दीर्घ रात्रि रबो जागि
दीप निबिबे ना !
कर्मभार नवप्राते नव सेवकेर हाते
करि जाबो दान,
मोर शेष कंठ स्वरे जाइबो घोषणा करे
तोमार आह्वान !"

(हे देवि, मुझे भय नहीं है, मैं जानता हूं, मेरी विजय होगी। हे रानी, हे महिमामयी, तुम्हारी आह्वान-वाणी को मैं सफल करूंगा। थका हुआ भी, मेरा हाथ न कांपेगा, मेरा गला न बैठ जायगा, मेरी वीणा न टूटेगी; नवीन प्रभातके लिये तमाम रात मैं जागता रहूंगा, दिया भी न गुल होगा नये प्रभातके आनेपर कार्यभार तुम्हारे किसी नये सेवकको सौंप जाऊंगा; अपने अन्तिम कण्ठस्वरमें मैं तुम्हारे आह्वानकी घोषणा करके जाऊंगा।)

किस संकल्पकी मीड़ोंसे, हृदयकी किस वासनाके मधुर सम पर ठहर-ठहर कर, 'अशेष' की यह रागिनी महाकवि रवीन्द्रनाथ अलाप रहे हैं, इसका पता लगाना बड़ा कठिन काम है। साधारण—मन इस विचित्र ढङ्गकी वर्णनाको पढ़ कर, जिसके नामके साथ सूरतका जरा भी मेल नहीं पाया जाता, स्वभावतः चौंक कर थोड़ी देरके लिये निराधार सा हो जाता है—अर्थमें डुबकी लगानेके लिये कोशिश तो करता है, पर पानी पर उसे बर्फीली चट्टानका एक हास्यास्पद भ्रम हो जाता है।

नादान बालककी प्रश्नभरी मौन दृष्टिसे इन पंक्तियोंकी ओर देख कर ही रह जाता है, जटिल अर्थ-ग्रन्थिके सुलझानेका साहस, भाषाके सुदृढ़ दुर्गको देखकर, पस्त हो जाता है।

परन्तु परिस्थिति वास्तवमें ऐसी जटिल नहीं। पञ्चभूतोंमें बन्द आत्माकी तरह वह महान होने पर भी दुर्बोध नहीं। भाषाके पींजड़ेमें भाव-शेर बन्द है,—बड़ा है—प्रखर-नख है, पर कुछ, कर नहीं सकता। थोड़ी देर पींजड़ेके पास खड़े रहिये, धैर्यके साथ; उसके सब स्वभावोंसे परिचित हो जाइयेगा, गर्जना भी सुननेको मिल जायगी, और उसकी गर्जनामें, यदि आप समझदार हैं, तो उसका भाव भी ताड़ जायंगे कि वह क्या चाहता है।

महाकविकी इस कविताका शीर्षक है 'अशेष', परन्तु अशेषताकी साफ छाप कविताकी पंक्तियोंमें कहीं पड़ने नहीं पाई; अशेषता, जीवनके अवश्यम्भावी सत्य किन्तु अज्ञात भविष्यकी तरह; भाषाकी गोदमें बिलकुल छिप गई है। यह 'अशेष' क्या है?—वही 'आह्वान' जिसका उल्लेख प्रत्येक भावके अन्तमें होता गया है। कवि सूत्रपातमें ही कहता है—"सब काम समाप्त हो चुके—प्रत्यूष माधवी-वनको जगा कर चला गया—फूलोंकी ओस पीकर, उनकी प्यास बढ़ाकर, दुपहर भी चली गई, पिछला पहर भी पश्चिमके छोरमें ढक गया, सबका अन्त हो गया; पर तुम्हारा आह्वान अब भी है—उसकी समाप्ति नहीं हुई—तुम मुझे अब भी बुला रहो हो।" यही 'अशेष' है।

स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि यह आह्वान 'अशेष' है—

माना, परन्तु यह है किसका आह्वान? यह एक कल्पना मात्र है या इसमें कुछ वास्तविकता भी है? यदि कल्पना है तो इसकी सार्थकता किस तरह सिद्ध होती है? यदि वास्तविकता है तो यह क्या है?

हम इसे कल्पना भी कहेंगे और इसे वास्तविकताका रूप भी देंगे—वास्तविकतासे हमारा मतलब सत्यसे है। पहले तो हम यह सिद्ध करना चाहते हैं कि कल्पना कभी निर्मूल नहीं होती—उसमें भी सत्यकी झलक रहती है, अथवा यों कहिये कि कल्पना स्वयं सत्य है। आप कल्पनाका विश्लेषण कीजिये। वह है क्या चीज? एक बहुत सीधा उदाहरण हमारे सामने यह संसार है। शास्त्र कहते हैं, यह कल्पना है। परन्तु क्या कोई इससे संसारको मिथ्या मान लेता है?—वह उसे सत्य ही देखता है। दूसरे वह अस्तित्वशाली भी है, क्या कोई कह सकता है कि संसार नहीं है? भारतका एक दर्शन संसारका अस्तित्व नहीं मानता। परन्तु यह कब? जब वह ब्रह्ममें अवस्थित है। जब ब्रह्ममें है तब उसके निकट संसारके ये चित्र भी नहीं हैं। परन्तु संसारियोंके लिये संसार कभी असत्य नहीं कहा जा सकता। इसी तरह, कल्पनाको भी लोग निर्मूल बतलाते हैं, परन्तु संसारकी तरह कल्पना भी साधारण है, वह कभी निर्मूल नहीं कही जा सकती। स्वर्ग और पातालको कवियोंने अपनी कल्पनाके बल पर एक करके दिखलानेकी चेष्टा की है। उनकी वह कल्पना भी बे-सिर-परकी

नहीं हो पाई। यदि उस कल्पनाको वे पूरी न उतार दें तो फिर वे कवि कैसे? एक जगह कविवर रवीन्द्रनाथने लिखा है—रात अपने अंधेरे पंख फैलाये हुए—आ रही है। उनकी इस कल्पनाको झूठ बतलानेका अधिकार इस युक्तिसे होता है—रातके न पंख होते हैं और न वह उन्हें फैला कर कभी आती है, इस तरहकी युक्तिसे कल्पनाको झूठ बतलाने वाले भ्रममें हैं। इसी कल्पनाको सत्य हम इस युक्तिसे कहेंगे—अंधेरे (काले) पंख फैलाकर आना स्वाभाविक है और यह स्वाभाविकता पक्षीके लिये है; रातके पङ्ख भले ही न हों, परन्तु यदि रातको पक्षीकी उपमा देकर कवि उसे पङ्ख फैला कर आनेके लिये कहता तो यह कोई दोष न था। उपमान-उपमेय साहित्य का एक अङ्ग है, यह सभी साहित्यक मानते हैं। 'रात, अंधेरे पङ्ख फैलाकर आ रही है, यह वाक्य यदि यों कहा जाता—'रात्रि—विहगी अपने अन्धकार-पङ्खोंको फैला कर आ रही है, तो इसमें किसी को दोष दिखानेका साहस न होता। क्योंकि पंख फैलाना विहगीके लिये ही सिद्ध होता, रातके हिस्सेमें रह जाता बस अन्धकार, परन्तु इस युगकी नवीनता संस्कृतके प्राचीन उपमान-उपमेयके बन्धनोंसे अलग हो गई है। उसे अब उस तरहकी वर्णना पसन्द नहीं। अस्तु इस कल्पनामें हमें असत्यकी छाया कहीं नहीं मिलती, और इसी युक्तिसे सिद्ध होता है कि कल्पना कभी—असत्य नहीं होती, एक कल्पनामें दूसरी कल्पना चाहे भले ही भिड़ा दी जाय, और इस तरहके

कार्यों में जो जितना कुशल है, साहित्यके मैदानमें वह उतना ही बड़ा महारथी। अतएव हम कहेंगे, महाकविके 'अशेष' में कल्पना भी है और सत्य भी।

अब प्रथम प्रश्नके साथ हम महाकविकी सुलझी हुई भी जटिल-सी जान पड़नेवाली ग्रन्थियोंको खोलनेकी चेष्टा करेंगे। 'आह्वान'ही अशेष है, यह हम बतला चुके हैं। अब यह बतलाना है कि यह किसका आह्वान है। हम पुनरुक्ति न करेंगे। आप 'अशेष'के प्रथम दोनों पैराग्राफ पढ़ जाइये, देखिये, पहले सन्ध्या का वर्णन है। फिर रात होती है। दिन भर काम करके थके हुए कविकी पुतलियोंसे स्वप्न आकर लिपट जाते हैं—उसका संगीत रुक जाता है—प्रियाकी आरजूमें अपनी ओर खींच लेनेकी जो एक विचित्र शक्ति होती है, वही उस समय क्लान्तिको प्राप्त है। वह भी कुल अंग समेट रही है ऐसे समय कविको फिर पुकार सुन पड़ती है, वह ज़रा सुखकी नींद नहीं सोने पाता। तभी तीसरे पैराग्राफके आरम्भमें मोहिनी कहकर भी अपनी स्वामिनीको वह निष्ठुर बतलाता है। मोहिनी इस लिये कि कवि उसपर मुग्ध है; निष्ठुर इसलिये कि कविके विश्रामके समय भी वह उसे पुकारती है। तभी कवि कहता है, मैंने अपना दिन तो तेरी सेवामें पार कर दिया अब मेरी रात भी तू हर लेना चाहती है। कितनी स्वाभाविक उक्ति है एक विश्रामप्रार्थी कविकी!

यह पुकार उसकी है जिसकी सेवामें कवि दिनभर रहा था। कवि अपनी कविताको छोड़ और किसकी सेवा करेंगे? अत-

एव यह पुकार कविता-कामिनीकी है। विश्रामके समयमें भी वह कविको छुट्टी नहीं देती। हृदयमें उसकी पुकार खलबली मचा रही है—भावके अनर्गल स्रोत उमड़ रहे हैं।

जब उस क्लान्त अवस्थामें भी कवि अपनेको संभाल नहीं सका तब उसके मुंहसे यह उक्ति निकली—"यह लो, मेरा सब कुछ रहा, मैं तुम्हारी सेवाके लिये (कविता लिखनेके लिये) तैय्यार होता हूं। परन्तु यदि नींदसे पलकें मुंद जायं—यदि थका हुआ इसलिये ढीला हाथ पहलेवाली निपुणता (पहलेकी तरह कविता करनेकी कुशलता) भूल जाय—आंखोंमें आंसू भर आये तो ऐ निर्दये, मेरा अपमान न करना, बल्कि यह याद करना कि मैंने असमयमें भी तुम्हारा आह्वान स्वीकार कर लिया था।" यही इस कविताकी बुनियाद है, परन्तु कितनी मजबूत है, पाठक स्वयं पढ़करके देखें। इस कविताके सम्बन्धमें हम कह सकते हैं कि यह एक वह कृति है जो साहित्यको अमर कर रही है।

संकल्प-समूहमें 'भैरवी गान' पर महाकविकी एक कविता है। यह भी साहित्यकी एक अमूल्य सम्पत्ति है। महाकवि कहते हैं—

"ओगो के तुमि बोसिया उदास मूरति
विषाद-शान्त शोभाते !
ओई भैरवी आर गेयोनको एई
प्रभाते !
मोर गृह-छाड़ा एई पथिक पराण
तरुण हृदय लोभाते ।"

(विषादके द्वारा इस शान्त हुई शोभामें बैठी ओ उदास मूर्ति तुम कौन हो? घरसे निकले हुए मेरे इन पथिक प्राणोंके तरुण-हृदयको लुभानेके लिये इस प्रभातमें वह भैरवी अब न गाओ।)

"ओई मन-उदासीन, ओई आशाहीन
ओई भाषा-हीन काकली
देय व्याकुल परशे सकल जीवन
बिकली।
देय चरणे बांधिया प्रेम-बाहु घेरा
अश्रु-कोमल शिकली।
हाय मिछे मने होये जीवनेर व्रत
मिछे मने होये सकली।"

(वह मनको उदास कर देनेवाली,—बिना आशाकी, बिना भाषाकी तान, अपने व्याकुल स्पर्शके साथ ही मेरे सम्पूर्ण जीवनको विकल कर देती है। वह मेरे पैरोंमें प्रेमकी बाहोंसे घिरि आंसुओंसे कोमल जंजीर डाल देती है हाय! उस समय तो फिर जीवनके सम्पूर्ण व्रत झूठे जान पड़ते हैं—सब मिथ्या प्रतीत होते हैं।)

कहीं कुछ नहीं है, भैरवी रागिनीकी वर्णना है। उसकी बिना भाषाकी एक तान यह हालत कर देती है। घर छोड़कर बाहर आये हुए कविको वह अपना विकल स्पर्श करा,—उसके कानोंमें पैठकर अपनी तान-मुरकियोंके साथ उसके हृदयमें भी मरोर पैदा कर देती है। इतना ही नहीं, वह कविको उसके घरकी

भी याद दिला देती है। घरमें जिसे अकेली छोड़कर वह बाहर निकल आया है, उसे भी उसके ध्यान-नेत्रोंके सामने लाकर छोड़ जाती है और कवि देखता है कि उसकी प्रियतमा उसके पैरोंमें आंसुओंसे कोमल प्रेम-बांहोंकी जञ्जीर डाल रही है। बस चाल रुक जाती है। फिर वह उसे छोड़कर बाहर जानेकी इच्छा नहीं करता। फिर तो जिन व्रतोंकी पूर्तिके लिये वह बाहर निकला था, वे सब उसकी प्रेम-प्रतिमाके सामने झूठे जान पड़ते हैं। यह हालत भैरवीकी एक तानसे होती है, देखा आपने? इसी भावको पुष्ट करते हुए रवीन्द्रनाथ आगे लिखते हैं—

"जारे फेलिया एसेछि, मने करि, तारे
फिरे देखे आसी शेषवार;
ओई कांदिछे से जेनो पलाए आकुल
केशभार!
जारा गृह-छाये बसि सजल-नयन
मुख मने पड़े से सबार।"

(जी चाहता है, जिसे छोड़कर चला आया हूं, उसे एकबार और, और इस अन्तिम वारके लिये, क्यों न चलकर देख लूं? जी कहता है, वह रो रही है—उसकी केश-राशि खुलकर बिखर गई है। घरकी छायामें बैठे हुए भी सजल-नयन मेरे घरवालोंका मुंह मुझे याद आ रहा है।)

"सेई सारा दिन मान सुनिभृत छाया
तरु-मर्मर-पवने,

सेई मुकुल - आकुल - बकुल - कुञ्ज
भवने,
सेई कुहु - कुहरित विरह रोदन
थेके थेके पशे श्रवणे!"

(दिनभरकी एकान्त छायावाली, पातोंको हिलाती हुई हवामें, मुकुलोंके भारसे व्याकुल हुए बकुल-कुञ्जोंके कुटीरमें गूञ्जता हुआ विरह-रोदन रह-रहकर मेरे कानोंमें पैठ रहा है।)

कवि अपनी प्रियतमा पत्नीके रोदनकी व्याख्या कर रहा है, उसका स्थान निर्द्देश कर रहा है। उसे याद आता है, उसकी पत्नी इस समय उस फुलवाड़ीमें है जहां दिनभर छाया रहती है। और हवा पातोंको झुला जाया करती है, जहां मुकलित मौलश्रीके अनेक कुञ्ज हैं और बीचमें बैठनेका एक कुटीर। वहीं उसकी प्रिया उसकी याद कर-करके आंसुओंसे आंचल भिगो रही है। कोयलकी कुहूके साथ मिला हुआ उसकी प्रियाका विरह-रोदन रह-रहकर उसके कानोंमें प्रवेश कर रहा है। यह इतना उत्पात, पाठक याद रक्खें, भैरवीकी एक ज़रासी तान सुनकर होता है।

× × × × ×

सदा करुण कण्ठे कांदिया गाहिबो,—
"होलो ना किछुई होबेना,
एई मायामय भवे चिर दिन किछू
र' बे ना।

केह जीवनेर जतो गुरुभार व्रत
धूलि होते तुलि लोबे ना।
एई संशय माझे कोन पथे जाई,
कारतरे मरी खारिया!
आमि कार मिछे दुखे मरितेछि, बुक
फाटिया!
भवे सत्य मिथ्या के करेछे भाग,
के रखेछे मत आँटिया!
यदि काज निते होये, कतो काज आछे
एका कि पारिबो करिते!
कांदे शिशर-विन्दु जगतेर तृषा
हेरिते!
केन आकुल सागरे जीवन सँपिबो
एकेला जीर्ण तरीते!
शेषे देखिबो पड़िल सुख-यौवन
फुलेर मतन खसिया,
हाय वसन्त-वायु मिछे चले गेलो
श्वसिया!
सेइ जेखाने जगत छिलो एक काले
सेई खाने आछे बोसिया!"

(करुणा-कण्ठसे सदा यह रोकर गाऊंगा—"कुछ न हुआ! कुछ होगा भी नहीं!—न इस मायामय संसारमें चिर-

काल कुछ रहेगा ही! जीवनके जितने गुरुभार हैं, उन्हें कोई धूलसे उठा भी न लेगा। इस संशयमें मैं किस पथपर जाऊं? —मैं इतनी मिहनत भी करूं तो किसके लिये! बृथा दुःखसे मेरी छाती फटी जा रही है! किसका दुःख! संसारमें सत्य और मिथ्याका भाग किसीने किया भी?—किसने मजबूतीसे अपना मत पकड़ रक्खा है? अगर काम ही मुझे लेना है, तो काम बहुतसे हैं; मैं अकेला क्या कर सकता हूं? मेरा यह प्रयत्न तो वैसा ही है जैसा संसारकी प्यास देखकर ओसके एक बूंदका रोना! क्यों मैं अकेला इस अछोर समुद्रकी टूटी नाव पर चढ़कर जान दूं? परन्तु अन्तमें हाय! अन्तमें देखूंगा, यह सुखका यौवन फूल-सा झर गया है। और वसन्तकी हवा बृथा ही सांस लेकर चली आ रही है! इतने पर भी देखूंगा, यह संसार एक समय जहां था, वहीं बना हुआ है।"

ये कविके संकल्प-विकल्प हैं। वह नवीन व्रतकी साधनाके लिये निकला है,परन्तु अब उसके पैर आगे नहीं बढ़ते। प्रियाका मुंह वह भूल नहीं सकता, यही उसकी कमजोरी है और संकल्पकी प्रतिकूलता पर विचार करता हुआ वह कहता है, मेरी आकांक्षा वैसी ही है जैसी ओसके एक बूंदकी, संसारकी प्यास बुझानेके लिये। वह कहता है, अगर मै लौट जाऊं तो देखूंगा, क्रमशः मेरा यौवन मलिन होकर वार्धक्यकी जीर्ण भूमिपर फूल-सा झरकर गिर गया है। उससे कोई काम नहीं हुआ। वसन्तकी हवा वृन्तको वृथा ही हिला-झुलाकर चली जाती है। और

संसार न एक पग बढ़ा न एक पग हटा। इस उक्तिमें कविका यही भाव है कि मनुष्य चाहे जो कुछ करे, संसारका आसन इससे नहीं डिगता, वह अपने ही स्थानपर अचल भावसे डटा रहता है, उसके पाप और पुण्य, सुख और दुःख, भाव और अभाव पूर्ववत् ही बने रहते हैं।
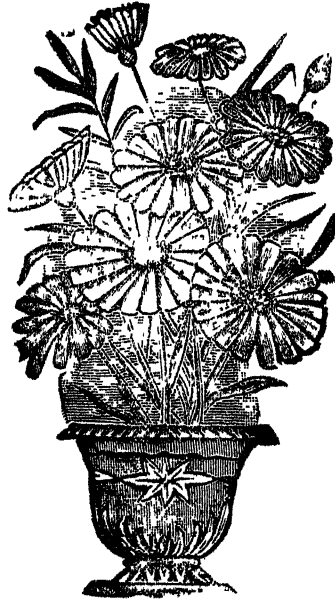
शिशु-सम्बन्धिनी रचना।

जो कवि और महाकवि होते हैं वे प्रकृतिके हर एक कमरेमें प्रवेश करनेका जन्मसिद्ध अधिकार लेकर आते हैं। वे प्रकृतिकी प्रत्येक भूमिपर—जनाना महलमें भी—बेधड़क चले जा सकते हैं। प्रकृतिको उनपर अविश्वास नहीं। वह उन्हें अपना बहुत ही सच्चरित्र और सुशील बच्चा समझती है, उनसे उसे किसी अनर्थका भय नहीं। प्रकृतिके जिस यथार्थ इतिहासके लिखनेका अधिकार लेकर वे आते हैं, उसे वह उनसे छिपा भी नहीं सकती। कारण, वह जानती है, इस पर्दा-सिस्टमका परिणाम उसके लिये अच्छा न होगा। क्योंकि उस तरह संसारसे उसकी पूजा उठ जायगी। यही कारण है कि जड़ और चेतन, सबकी प्रकृति कविको अपना स्वरूप दिखा देती है। वे दर्पण हैं और प्रकृतिके प्रत्येक विषय उनपर पड़नेवाला सच्चा बिम्ब।

बच्चोंके लिये, बच्चों ही के स्वभावकी बहुतसी कविताएं महाकविने लिखी हैं। उनकी ये कविताएं पढ़कर बच्चों ही की तरह हृदयमें एक अपार आनन्द उमड़ चलता है। दूसरी बात

यह कि भाषाका संगठन भी महाकविने वैसा ही किया है जैसा अक्सर बच्चोंकी भाषामें पाया जाता है। इन कविताओंमें एक दूसरे ढङ्गकी किन्तु बहुत ही सुहावनी और मनोमोहिनी प्रतिभाका विकास देख पड़ता है। इसकी भाषाकी तो जितनी भी प्रशंसा हो, थोड़ी है। जान पड़ता है, एक बच्चा बोल रहा है। देखिये विषय है 'ज्योतिष-शास्त्र।' परन्तु यह पण्डितोंका 'ज्योतिष-शास्त्र' नहीं, यह बच्चोंकी ज्योति है। महाकवि लिखते हैं—

"आमी सुधू बोले छिलाम—
कदम गाछेर डाले
पूर्णिमा-चाँद आट्का पड़े
जखन सन्ध्याकाले
तखन कि केउ तारे
धरे आनते पारे?'
सुने दादा हेसे केनो
बोलले आमाय 'खोका
तोर मतो आर देखी नाइ तो बोका!
चाँद जे थाके अनेक दूरे
केमन करे छुँइ!'
आमी बोलि 'दादा तुमी
जानो ना किच्छुइ!
मा आमादेर हासे जखन

बइ जानलार फांके
तखन तुमि बोलबे कि मा
अनेक दूरे थाके ?'
तबू दादा बोले आमाय खोका
तोर मतो आर देखी नाइ तो बोका

बच्चा अपनी मांसे कहता है—

(मैंने बस इतना ही कहा था कि जब पूनोंका चाँद शामको कदमकी डालपर अटक जाय तब भला कोई उसे पकड़कर ले आवे। मेरी बातको सुनकर दादाने हँसते हुए मुझसे कहा, लल्ला, तेरे जैसा बेवकूफ तो मैंने नहीं देखा, चाँद कुछ यहां थोड़े ही रहत। है जो मैं उसे 'छूलूं' ? वह तो बहुत दूर रहता है।' दादा की बात सुनकर मैंने कहा, 'दादा, तुम कुछ भी नहीं जानते। अच्छा उस झरोखेके दराजमें जब हमलोग यहांसे मांको हँसते हुए देखते हैं तब क्या तुम कहोगे कि मां बहुत दूर रहती है ? मेरे इस तरह कहनेपर भी दादाने मुझसे कहा, 'लल्ला, तेरे जैसा बेवकूफ तो मैंने नहीं देखा।'

दादा बोले, "पाबी कोथाय
अत बड़ फांद ?"
आमी बोली, "केन दादा
वइ तो छोटो चाँद,
दुटी मोठोय ओरे
आनते पारी धोरे !"

सुने दादा हेसे केनो
बोलले आमाय, "खोका
तोर मतो आर देखी नाइ तो बोका !
चाँद यदि यह काछे आसतो
देखते कतो बड़ो !"
आमी बोली, 'कि तुमी छाई
इ स्कूले जे पड़ो ।
मा आमादेर चूमो खेते
माथा करे नीचू
तखन कि मार मुखटी देखाय
मस्त बड़ो किछू ?"
तबू दादा बोले आमाय, "खोका,
तोर मतो आर देखी नाइतो बोका !"

(दादा कहता था, 'इतना बड़ा फन्दा तू कहांसे लायेगा ?, तब मैंने कहा, क्यों दादा, वह देखो न, छोटा सा तो है चांद, दोनों मुट्ठियोंमें भर कर, कहो तो उसे पकड़ लाऊं ।' मेरी बात सुन कर दादाने हंसते हुए कहा, 'लल्ला, तेरी तरहका बेवकूफ तो मैंने नहीं देखा । यह चाँद अगर पास आ जाय तो तू देखता कि यह कितना बड़ा है । मैंने कहा, 'क्यों तुम वाहियात स्कूल जाते हो ? जब हमारी मां सिर झुकाकर हम लोगोंको चूम लेती है तब क्या मांका मुंह बहुत बड़ा हो जाता है ?" मेरे इस तरहके कहने पर भी, दादाने कहा 'लल्ला, तेरी तरह बेवकूफ तो मैंने नहीं देखा ।'

महाकविकी इस कविताका मर्म पाठक समझ गये होंगे। इसमें बच्चेके भोलेपनको किस तरह कविवरकी भोली तूलिका अङ्कित करती है, पाठकोंने देखा होगा। कविता लिखते हुए महाकवि भी बालक हो गये हैं, भाव बालक, वर्णन बालक, महाकवि बालक; सहृदय पाठक भी पढ़ते हुए बालपनकी सुखद स्मृतिमें पहुंच कर बालक ही हो जाते हैं। चांदको पेड़की ओटमें उगा हुआ देख, बालक उसे कदमकी डाल पर अटका हुआ कहता है। पेड़ोंके छेदसे छनकर आती हुई चाँदनी जब दर्शक पर अपनी मोहिनी डाल, उसे चांदके पास आकर्षित कर ले जाती है, तब वह देखता है, चाँद खुद किसी मोहिनी शक्तिसे खिंचा हुआ अपने सुदूर आकाशको छोड़ पेड़ोंकी डालसे आकर लिपट गया है, जैसे थककर और चलना न चाहता हो,—जड़ पेड़ोंसे लिपट कर अपनी सहायताकी प्रार्थना करता हो—विश्व विधानसे जान बचानेके लिये। कदमकी डाल पर चांदको अटक गया देख बच्चेने अपने बड़े भाईसे उसे ले आनेके लिये कहा था। इस पर उसके भाईने उसे बेवकूफ कहा। इसी बातका उसे रञ्ज है। वह भाईकी बात पर विश्वास नहीं कर सका, और करना भी नहीं चाहिये था, कर लेता तो बच्चेकी प्रकृति पर प्रौढ़ताकी छाप जो लग जाती। परन्तु उसे विश्वास नहीं हुआ, इस विषयको किसी नीरस उक्तिके द्वारा महाकविने समाप्त नहीं किया, वे बच्चेकी पुरजोर युक्ति भी उसीसे कहलाते हैं; वह कहता है, जब हमारी मां झरोखेसे निहारती है तब क्या वह

इतनी दूर रहता है कि हम उसके पास जा नहीं सकते ? यहां मधुर सौन्दर्यके साथ कवित्वकलाके एक बहुत ही कोमल दलको महाकविने खोल कर खिला दिया है। लघु हस्त रवीन्द्रनाथ ही इस कोमल पङ्खड़ीको खोल सकते थे, दूसरोंके स्पर्श मात्रसे दलमें दाग लग जाता, फिर वह इस तरहसे खुल न सकता था। एक तो चाँदके साथ मुखकी उपमा और वह भी बच्चेके अज्ञात भावसे, क्योंकि बच्चेको यह साहित्यक तौल क्या मालूम, वह तो स्वभावतः अपनी मांको याद करता है और जिस तरह झरोखे पर बैठी हुई, अपनी मांके पास वह अनायास ही जीने पर चढ़ कर चला जा सकता है, उसी तरह अपने भाईके लिये भी, पेड़ पर चढ़ कर चांदको पकड़ लाना, वह सम्भव सिद्ध करता है। जब उसका भाई कहता है, चाँद बहुत बड़ा है, तब भी उसे विश्वास नहीं होता, वह कहता है, जब हमारी मां हमें चूमती है, उसका मुंह हमारे मुंह पर रख जाता है, तब क्या वह बहुत बड़ा हो जाता है ? जब मांका मुंह पास आने पर नहीं बड़ा होता तब चाँद कैसे बड़ा हो जायगा ? देखिये कितनी मजबूत युक्ति है ? कितना भोलापन है ! महाकविकी भाषाकी तो कुछ बात ही न पूछिये। छोटे छोटे बच्चे जिस भाषामें बोलते-बतलाते हैं, बिलकुल वही भाषा, मधुर और खूब मजी हुई, बच्चोंकी; पर कवित्व-रससे सराबोर।

एक कविता है 'समालोचक'। इसमें बच्चा अपने पिताकी समालोचना करता है:—

शिशु-सम्बन्धिनी रचना।

"बाबा नाकी बोइ लिखे सब निजे!
किच्छुइ बोझा जायना लिखेन किजे!
से दिन पड़े सुनाच्छिलेन तोरे
बुझे छिली बल मां सत्यि कोरे!
एमन लेखाय तबे
बोल दिखी की हबे?
तोर मुखे मा जेमन कथा सुनी
तेमन केनो लेखेन नाको उनी?
ठाकुर मा की बाबा के कक्खनो
राजर कथा सुनायनी को कोनो?
से सब कथा गुली
गेछे बुझी भूलि?
स्नान करते बेला होलो देखे
तुमी केबल जाब माँ डेके डेके,—
खाबार निये तुमिइ बोसे थाको,
से कथा ताँर मनेइ थाके नाको!
करेन सारा बेला
लेखा लेखा खेला!
बाबार घरे आमी खेलते गेले
तुमी आमाय बोलो दुष्टू छेले!
बको आमाय गोल करले परे—
"देखचिस ने लिखचे बाबा घरे!"

बोल तो, सत्ति बोल,
लिखे की होय फ'ल!
आमी जखन बाबार खाता टेने
लिखी बोसे दुआत कलम एने—
क ख ग घ ङ य र ल व
आमार बेला केन राग करो?
बाबा जखन लेखे
कथा कवना देखे!
बड़ो बड़ो रुल काटा कागज
नष्ट बाबा करेन नाकि रोज?
आमी यदि नौका करते चाई
यमनी बोलो—नष्ट करते नाई!
सादा कागज, कालो।
करले बुझी भालो?"

बच्चा अपनी मां से कहता है—

(क्यों मां! बाबूजी पुस्तकें लिखते हैं—न? परन्तु क्या लिखते हैं, कुछ खाक समझमें नहीं आता। अच्छा उस दिन तो तुझे पढ़कर सुना रहे थे, क्या तू कुछ समझती थी, मां सच-सच बता। अगर तू नहीं समझी तो इस तरहके लिखनेसे भला होगा क्या?

मां, तेरे मुंहसे जैसी बातें सुनता हूं, उस तरहकी बातें बाबूजी क्यों नहीं लिखते? क्या बूढ़ी दीदीने बाबूजीको राजाकी

बातें कभी नहीं सुनाई ? वे सब बातें बाबूजी अब भूल गये हैं—न ?

मां, उन्हें नहानेकी देर करते देख जब तू उन्हें पुकार-पुकारकर चली आती है, और खाना लिये तू बैठी ही रहती है, तब क्या उन्हें इस बातकी याद भी नहीं होती ?—दिनभर लिख-लिखकर खेल किया करते हैं!

जब मैं कभी बाबूजीके कमरेमें खेलनेके लिये जाता हूं, तब तू मुझे कहती है—क्योंरे, तू बड़ा बदमाश है। चिल्लानेपर तू मुझे बकती है। कहती है, देखता नहीं, तेरे बाबूजी लिख रहे हैं। अच्छा मां, सच कह, लिखनेसे फल क्या होता है ?

जब मैं बाबूजीका खाता खींचकर दवात-कलम ले, क ख ग घ ङ य र ल व लिखता हूं, तब मेरी बारी पर तू क्यों गुस्सा करती है ? और जब बाबूजी लिखते हैं तब तू कुछ नहीं बोलती।

लकीर वाले बड़े बड़े कागज क्या बाबूजी रोज नहीं बरबाद करते ? जब मैं नाव बनानेके लिये मांगता हूं तब तू कहती है, कागज बरबाद न करना चाहिये। क्यों मां, सफेद कागजोंको काला करना ही अच्छा होता है—न ?)

यह बच्चेकी समालोचना है। युक्ति कितनी मजबूत है! बच्चेकी स्वाभाविकता कहीं भी नष्ट नहीं हो पाई। बच्चा हो या वृद्ध, वह अपनी बुद्धिके नाप-दण्डसे संसारको नापता है, यही मनुष्यका स्वभाव है। मनुष्य मात्र इस स्वभावके वश हैं। इस

स्वभावको कोई छोड़ भी नहीं सकता। अगर स्वभाव छूट जाय, प्रकृतिसे सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाय, तब यह संसार भी नष्ट हो जाय। भिन्न भिन्न प्रकृतियोंका घात-प्रतिघात ही संसार है—यही उसकी लीला। अस्तु, प्रकृति या स्वभावको मनुष्य छोड़ नहीं सकता। हम देखते हैं, हमारे देशमें एक विषयपर अनेक प्रकारकी समालोचनाएं हुआ करती हैं, एक विद्वानके मतसे दूसरे विद्वान्‌का मत नहीं मिलता। यह क्यों? इसका कारण बस यही कि उनके स्वभाव जुदा जुदा हैं--उनकी प्रकृति एक नहीं। मनका एक दूसरा स्वभाव यह भी है कि वह जो कुछ चाहता है—जिसे पसन्द करता है उसीके अनुकूल, युक्तियां जोड़ता जाता है। बच्चा भी अपनी समालोचनामें अपनेको अपने बाबूजीसे कहीं अधिक बुद्धिमान समझता है, परन्तु उसकी बातोंमें प्रवीण समालोचकोंकी रूढ़ता नहीं है, सरलतापूर्वक वह अपनी मांसे अपने बाबूजी की मूर्खताकी जांच कर रहा है। अपने बाबूजीका लिखना वह खुद नहीं समझ सका, अतएव उसे विश्वास नहीं कि उस भाषाको उसकी मां समझी होगी। महाकविने बच्चेके स्वभावका बड़ा ही सुन्दर चित्रांकण किया है। बच्चेकी दृष्टिमें संसार खिलवाड़ है, उसके बाबूजी भी लिख-लिखकर खिलवाड़ किया करते हैं। उसे एक बातका बड़ा दुःख है। वह जब अपने बाबूजीकी दवात और कलम लेकर ककहरा गोदने लगता है तब उसकी मां उसे तो डांटती है पर उसके बाबूजीसे कुछ नहीं बोलती जो दिनभर बैठे हुए खिलवाड़ किया

करते हैं। ये कविताएं निरी सीधी भाषामें लिखी हुई होने पर भी उच्चकोटिकी हैं। मनुष्यके मनमें पैठना जितना सहल है बालककी प्रकृतिको परखना उतना ही कठिन।

अब बच्चेका विज्ञान सुनिये। एक कविता 'वैज्ञानिक'नामकी है। बच्चा अपनी मांसे कहता है—

जेमनी मागो गुरु गुरु
मेघेर पेले साड़ा,
एमनी एल आषाढ़ मासे
बृष्टि जलेर धारा।
पूषे हावा माठ पेरिये
जेमनी पड़लो आसी
बांस बागाने सों-सों कोरे
बाजिये दिये बांसी—
अमनी देख मा चेये
सकल मारी छेये
कोथा थेके उठलो जे फूल
एतो राशी राशी!
तुइ जे भाविस ओरा केवल
वमनी जेनो फूल,
आमार मने होय मा तोदेर
सेटा भारी भूल!
ओरा सब .इस्कूलेर छेले

पुथी पत्र कांखे,
माटीर नीचे ओरा ओदेर
पाठशाला ते थाके ।
ओरा पड़ा करे
दुआर-बन्द घरे,
खेलते चाइले गुरु मोशाय
दांड़ करिये राखे ।
बशेक जैष्टि मासके ओरा
दुपुर बेला कोय
आषाढ़ होले आँधार कोरे
विकेल ओदेर होय ।
डाल पालारा शब्द करे
घन बनेर माझे
मेघेर डाके तखन ओदेर
साढ़े चारटे बाजे ।
ओमनी छुटी पेये
आसे सबाइ धेये,
जानिस मागो ओदेर जेनो
आकाशे तेइ बाड़ी
रात्रे जेथाय तारा गुली
दांड़ाय सारी सारी ।
देखिसने मा बागान छेये

व्यस्त ओरा कतो
बुझते पारिस केनो ओदेर
ताड़ा ताड़ो अतो?
जानिस कि कार काछे
हाथ बाड़िये आछे
मा कि ओदेर नेइको भाविस
आमार मायेर मतो?

(मां! ज्यों ही गरगराहटसे मेघोंकी आहट पाई जाने लगी, ज्यों ही आषाढ़की धारा झरने लगी, ज्यों ही पूरबकी हवा मैदान पार करके बांसके झाड़ोंमें बासुरी फूँकती हुई आने लगी, कि फिर तू देख, न जाने कहांसे ये इतने फूल निकल पड़ते हैं—ढेरके ढेर। तू सोचती होगी, वे ऐसे ही बस फूल हैं—न? मां, मुझे तो जान पड़ता है, यह तेरी बहुत बड़ी भूल है। वे फूल नहीं, वे मदरसेके लड़के हैं; देख न, बगलमें किताब दबाये हुए हैं। वे मिट्टीके नीचे अपनी पाठशालामें रहते हैं। हम लोग जैसे दरवाजे खोलकर पढ़ते हैं, वे उस तरह नहीं पढ़ते, वे दरवाजा बन्द कर लेते हैं, तब पढ़ते हैं। वे मारे डरके खेलना भी नहीं चाहते, अगर चाहें तो पंडितजी खड़ा कर रक्खें। उनकी दुपहर कब होती है, तू जानती है?—वैशाख और जेठ में। और जब आषाढ़ आता है, तब मेघोंके अंधेरेमें उनका पिछला पहर होता है। और जब घोर जङ्गलोंमें डालियोंकी खड़खड़ाहट, हवाकी सनसनाहट, और मेघोंमें गर्जना

होने लगती है, तब इस शब्दमें उनके साढ़े चार बजते हैं। बस छुट्टी मिली नहीं कि सब-के-सब दौड़ पड़े, जर्द, सफेद, सब्ज और लाल, कितनी ही तरहके कपड़े पहने हुए। मां, सुन, जान पड़ता है ये सब आकाशमें रहते हैं जहां रातको तारे कतार बांध कर खड़े होते हैं। देख न, बगोचे भरमें फैले हुए, उनमें कितनी जल्दबाजी देख पड़ती है। मां, क्या तू कह सकती है—उनमें इतनी जल्दबाजी क्यों है? तू जानती है, ये किस के पास हाथ फैलाये हुए हैं? तू क्या सोचती है, मेरी मांकी तरह उनके मां नहीं है।

बच्चेके मुखसे, बच्चेकी तुलना और बच्चेकी आलंकारिक भाषामें, रवीन्द्रनाथ एक बहुत बड़ा तत्व कहला देते हैं। न कहीं अस्वाभाविकता है, न असंगति; इतने पर भी वे जो कुछ कहाना चाहते हैं, कहा कर पूरा उतार देते हैं। जहाँ बच्चा फूलोंके सम्बन्धमें अपनी मांसे कहता है, वे पातालमें पढ़नेके लिये जाते हैं, वहां उनका उद्देश्य बीजकी शिक्षाके लिये या प्रगतिके लिये भेजना है—वह संसरणशील हो कर निकलता है। जेठ-वैशाख फल रूपी छात्रोंको दुपहर, मेघोंकी गर्जना, उनके छुट्टीके समयमें की गई घण्टेकी आवाज है; यह सब अलंकार मात्र हैं। हाँ, इसमें दलोंके विकसित होनेकी एक वैज्ञानिक व्याख्या भी है, परन्तु इतनी छानबीनकी आवश्यकता नहीं परन्तु जहां बच्चा आकाशको उनका घर बतलाता है, वहां कल्पना कमाल कर देती है। आकाश तत्वको ही शास्त्रोंमें सब
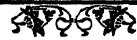
चोजोंका आश्रयस्थल कहा गया है। जहां बच्चा अपनी मांसे कहता है, मेरे जिस तरह मां है, उस तरह उनके भी मां है, वहां एक दूसरे सूक्ष्म सोपानपर पहुंचकर शास्त्रके सर्वोच्च सत्यको महाकवि जिस खूबीसे सिद्ध कर देते हैं, उसकी प्रशंसाके लिये एक भी उचित शब्द मुंहसे नहीं निकलता। आकाशको घर बतलाकर यदि कवि चुप रह गये होते तो एक बहुत बड़ी गलती हो जाती। क्योंकि घरका मालिक भी तो एक होता है। उसकी फिर कोई पहचान न हो सकती थी। परन्तु बच्चेके मुखसे उसका भी उल्लेख आपने करा दिया और मालकिनके रूपमें फूलोंकी मां बतलाकर। वह है ब्रह्म, आकाशसे भी सूक्ष्म—आकाशकी सूक्ष्मतामें अवस्थान करनेवाला,—सबका जनक—सबकी जननी। बच्चेके मुखसे, इतनी स्वाभाविक भाषा और स्वाभाविक वर्णनाके द्वारा इतना ऊंचा विज्ञान कहलाकर बच्चेको पूरा वैज्ञानिक सिद्ध कर देना साधारण मनुष्यका काम नहीं। महाकवि रवीन्द्रनाथने जिस सरलतासे इतना गहन तत्व कह डाला है,दूसरोंके लिये इसका प्रयास उतना ही दुस्साध्य है।

बच्चोंकी भाषामें 'नदी'पर आपने कविता लिखी है। कविता बहुत बड़ी है। कुछ अंश हम उद्धृत करते हैं। देखिये, सीधी भाषामें भी कितने ऊंचे भाव आ सकते हैं—

"ओरे तोरा कि जानिस केउ
जले केनो उठे एतो ढेउ!
ओरा दिवस रजनी नाचे,

ताहा शिखेछे काहार काछे ?
सुन चल् चल् छल् छल्
सदाइ गाहिया चलेछे जल ।
ओरा कारे डाके बाहु तुले,
ओरा कार कोले बोसे दुले ?
सदा हेसे करे लुटो पुटी,
चले कोन् खाने छुटो छुटी ?
ओरा सकलेर मन तुषी
आछे आपनार मने खुशी

× × × ×

आमी बोसे बोसे ताइ भाबी
नदी कोथा होते एलो नाबी !
कोथाय पहाड़ से कोन खाने,
ताहार नाम कि केहइ जाने ?
केहो जेते पारे तार काछे ?
सेथाय मानष कि केउ आछे ?
सेथा नाहीं तरु नाहीं घास,
नाहीं पशु पाखो देर वास,
सेथा शबद किछु ना सुनी
पाहाड़ बोसे आछे महामुनि !
ताहार माथार उपरे शुधू
सादा बरफ करिछे धूधू

सेथा राशि-राशि मेघ जतो
थाके घरेर छेलेर मतो।
सुधू हिमेर मतन हावा,
सेथाय करे सदा आसा-जावया,
सुधू सारा रात तारा गुली
तारे चेये देखे आँखी खुली।
सुधू भोरेर किरण एसे
तारे मुकुट पराय हेसे।
× × × ×
सेई नील आकाशेर पाये,
सेथा कोमल मेघेर गाये,
सेथा सादा बरफेर बुके
नदी घुमाय स्वप्न-सुखे।
कबे मुखे तार रोद् लेगे
नदी आपनी उठिलो जेगे
कबे एकदा रोदेर बेला
ताहार मने पड़े गेलो खेला,
सेथाय एका छिलो दिन राती
केहइ छिलो ना ताहार साथी;
सेथाय कथा नाई कारो घरे,
सेथाय गान केह नाहीं करे।
ताइ झुस झुस फिरि फिरि

नदी	बाहिरिलो धिरी-धिरी
मने	भाविलो जा आछे भवे
सबइ	देखिया लइते होबे
नीचे	पहाड़ेर बुक जुड़े
गाछ	उठेछे आकाश फुड़े ।
तारा	बुड़ो बुड़ो तरु जतो,
तादेर	बयस के जाने क तो !
तादेर	खोपे-खापे गाँठे गाँठे
पाखी	बासा बांधे कुटो-काठे ।
तारा	डाल तुले कालो कालो
आड़ाल	करेछे रविर आलो ।
तादेर	शाखाय जटार मतो
झुले	पड़ेछे शेवला जतो ;
तारा	मिलाये मिलाये कांध
जेनो	पेतेछे आंधार फांद ।
तादेर	तले-तले निरिबिली
नदी	हेसे चले खिलि खिली ।
तारे	के पारे राखिते धरे
से जे	छुटो छुटी जाय सरे ।
से जे	सदा खेले लुको चुरी,
ताहार	पाये पाये बाजे नुड़ी ।

× × × ×

पथे शिला आछे राशि राशि
ताहा ठेलि चले हासि हासि।
पाहाड़ यदि थाके पथ जुड़े,
नदी हेसे जाय बेंके चुरे।
सेथा बास करे शिं-तोला
जतो बुनो गाछ दाड़ी-झोला।
सेथाय हरिण रोंवांय भरा
तारा कारेव देय ना धरा।
सेथाय मानुष नूतन तरो
तादेर शरीर कठिन बड़ो।
तादेर चोक दुटो नय सोजा,
तादेर कथा नाहीं जाय बोझा,
तारा पोहाड़ेर छेले मये
सदाई काज करे गान गेये।
तारा सारा दिन मान खेटे,
आने बोझा भरा काठ केटे।
तारा चड़िया शिखर परे
बनेर हरिण शिकार करे।

× × × ×

नदी जतो आगे आगे चले
ततोइ साथी जुटे दले दले।
तारा तारी मतो, घर होते

सबाइ बाहिर होयेछे पथे;
पाये ठुन-ठुन बाजे तुड़ी,
जेनो बाजिते छे मल चुड़ी;
गाये आलो करे झिक झिक,
येन परेछे हीरार चीक।
मुखे कल कल कतो भाषे
एतो कथा कोथा होते आसे।
शेषे सखीते सखीते मेली
हेसे गाये गाये हेला हेली।
शेषे कोला कुली कलरवे
तारा एक होये जाय सबे।
तखन कल कल छूटे जल,
कांपे टलमल धरातल,
कोथाय नीचे पड़े झर झर,
पाथर केंपे उठे थर थर,
शिला खान-खान जाय टुटे,
नदी चले एलो केटे कुटे।
धारे गाछगुलो बड़ो बड़ो
तारा होये पड़े पड़ो-पड़ो।
कत बड़ो पाथुरेर चाप
जले खसे पड़े झुप-झाप।
तखन माटी गुला घोला जले

फेना भेसे जाय दले-दले।
जले पाक घुरे घुरे उठे,
जेन पागलेर मतो छुटे।
× × × ×

(क्योंजी, क्या तुम कोई कह सकते हो, ये पानीमें इतनी तरंगे क्यों उठती हैं ? देखो, वे दिन-रात नाचती रहती हैं; अच्छा यह नाच उनलोगोंने किससे सीखा है ? सुनो, चल् चल् छल् छल्,सदा गाती हुई चली जा रही हैं। वे बाहें पसारकर किसे बुलाती है ? देखो—वे झूम रही हैं—बता दो मुझे—वे किसकी गोदपर बैठकर झूम रही हैं ? सदा हँस-हँसकर लहालोट हो जाती हैं, और दौड़ी चली जा रही हैं—किसकी ओर जा रही हैं ? वे सबके मनको सन्तुष्ट करके खुद भी आनन्दमें हैं।

× × × × ×

बैठा हुआ मैं यह सोचता हूं कि नदी कहांसे उतरकर आई है ? वह पहाड़ भी कहां है ? क्या उसका नाम कोई जानता है ? क्या वहां कोई आदमी भी रहता है ? वहां तो न पेड़ है न घास; न वहां पशु-पक्षियोंका घर है, वहांका कोई शब्द भी तो नहीं सुन पड़ता, बस एकमात्र महर्षि पर्वत बैठे हुए हैं। उनके सिर पर केवल सफेद बर्फ छाई हुई है। कितने ही मेघ घरके बच्चे की तरह वहां रहते हैं! सिर्फ हिमकी तरह ठंढी हवा सदा आया-जाया करती है, उसे कोई देखता है तो बस सारी रात तारे आंखें फाड़-फाड़कर उसे देखते रहते हैं। केवल सुबह

की किरण वहां आती है और हँसकर उसे मुकुट पहना जाती है।

× × × × ×

उस नीले आसमानके पैरोंपर, कोमल मेघोंकी देहमें, शुभ्र तुषारकी छातीपर अपने स्वप्नमय सुखके साथ नदी सोती रहती है! न जाने कब उसके मुंहमें धूप लगी थी, देखो न, नदी जग पड़ी है। धूपके लगनेपर उसे न जाने कब खेलकी याद आ गई! वहां उसके खेलनेके साथी और कोई न थे, थे बस दिन और रात। वहां किसीके घरमें बातचीत नहीं होती, कोई गाता भी नहीं। इसीलिये तो धीरे धीरे, झिर-झिर झुर-झुर करती हुई नदी वहां निकल चली। उसने सोचा, संसारमें जो कुछ है, सब देख लेना चाहिये। नीचे पहाड़की छाती भरमें फैले आकाशको छेदकर पेड़ निकले हुए हैं। वे सब बड़े पुराने पेड़ हैं, उम्र उनकी कौन जाने कितनी होगी! उनके कोटरोंमें और हर एक गांठमें लकड़ियां और तिनके चुन २ कर पक्षी घोसले बनाते हैं। उनलोगोंने कालो काली डालियां फैलाकर सूरज के उजालेको बिलकुल छिपा लिया है। उनकी फुलोंमें जटाकी तरह न जाने कितना सिवार लिपटा हुआ झूल रहा है। उन्होंने एक दूसरेके कन्धेसे कन्धा मिलाकर मानों अन्धकारका जाल बिछा रक्खा है। उनके नीचे बड़ा एकान्त है, नदी वहां जाकर हँस पड़ती है, और हँसती हुई वहांसे चल देती है। उसे अगर कोई पकड़ना चाहे तो पकड़ नहीं सकता, वह दौड़कर भाग जाती है। वह सदा इसी तरह छुई-छुअल खेलती रहती

है और उसके पैरोंमें पत्थरके छोटे छोटे टुकड़े बजते रहते हैं।

× × × × ×

रास्ते पर जो शिलाओंकी राशि मिलती है, उसे वह मुस्कराती हुई पैरोंसे ठेल कर चली जाती है। पहाड़ अगर रास्ता घेरे हुए खड़ा हुआ हो तो हंसती हुई, वह वहांसे घूमकर जाती है। वहां ऊंचे-उठी-सींगों और लटकटी हुई दाढ़ी-वाले सब जङ्गली बकरे रहते हैं। वहां रोवोंसे भरे हुए हिरन रहते हैं, वे किसी को पकड़ाई नहीं देते। वहां एक नये ढङ्गके आदमी रहते हैं। उनकी देह बड़ी मजबूत होती है। उनकी आखें तिरछी होती हैं और उनकी बात समझमें नहीं आती। वे पहाड़ की सन्तानें हैं। वे सदा गाते हुए काम करते हैं। वे दिन भर मिहनत करके बोझ भर लकड़ी काटकर लाते हैं। वे पहाड़की चोटी पर चढ़कर जङ्गली हिरणोंका शिकार किया करते हैं।

× × × × ×

नदी जितना ही आगे आगे चलती है, उतने ही उसके साथी भी होते जाते हैं, दलके दल उसकी तरह वे भी घर-द्वार छोड़ कर निकल पड़े हैं। उसके पैरोंमें पत्थरकी गोलियोंकी ठनकार होती रहती है, जैसे कड़े और चूड़ियां बजती हों। उसकी देह में किरणें ऐसा चमकती हैं जैसे उसने हीरेकी चिक (टीक) पहनी हो। उसके मुखमें कल-कल स्वरसे कितनी ही भाषा निकलती है, भला इतनी बात कहांसे आती है? अन्तमें सब सखियां एक

दूसरीसे मिल-जुलकर, हंसती हुई झूम-झूमकर एक दूसरीकी देहमें गिरती हैं। फिर—भेंटते समयके कलरवके साथ ही वे सब एक हो जाती हैं। तब कल-कल-स्वरसे पानी बह चलता है, धरा टल्मल्-टल्मल् कांपने लगती है। कहीं झर-झर स्वरसे पानी नीचे गिरता है, और पत्थर थर्राने लगता है। शिलाओंके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, नदी नाला काट-छांट कर चली जाती है। रास्तेके जितने बड़े-बड़े पेड़ हैं सब गिरने पर हो जाते हैं। कितने ही बड़े बड़े पत्थरोंके चहार टूट-टूट कर झपाझप पानीमें गिरते रहते हैं। तब गली हुई मिट्टीके गँदले पानीमें फेनोंका दल बह चलता है। यानी भंवर उठती और पागलकी तरह वह भी दौड़ चलती है।)

नदी पर लिखी महाकविकी इस कविताकी आलोचना करने की आवश्यकता नहीं। कविताके भाव आपने खूब प्रस्फुट कर दिये हैं। बच्चोंके लिये ऊंचे भावोंकी साहित्यिक कविता भी बहुत अच्छी की जा सकती है, इसका आखों-देखा प्रमाण आप को उन पंक्तियोंसे मिल जायगा। एक दूसरी कविता पढ़िये। नाम है 'मास्टर बाबू'। यहां बच्चा खुद मास्टरकी कुर्सी ग्रहण करता है। उसका छात्र है बिल्लीका बच्चा। बङ्गालमें एक कहानी बहुत प्रचलित है। किसी स्यारने एक मदरसा खोला था। उसमें सैकड़ों झींगुर और कितने ही चौपाये—छेपाये और सैकड़ों पैरवाले जीवोंके बच्चे पढ़नेके लिये आते थे। अस्तु कहानी बहुत लम्बी चौड़ी है, हम तो बिल्लीके बच्चेके पढ़ाने वाले

मानवशिशुके माष्टर बननेका कारण मात्र बतलाना चाहते हैं। कहना न होगा कि बच्चेको वह प्रचलित कहानी सुनकर ही मास्टर बननेका शौक चर्राया था। बच्चा खुद भी पाठशाला जाता है, शायद पहली पुस्तक पढ़ चुका है, उसके पढ़नेके ढङ्गसे यह बात प्रकट हो जाती है। उसने स्वयं जो पाठ याद किया है, वही बिल्लीके बच्चेको भी पढ़ाता है। हां, जिस स्यारने पाठ-शाला खोली थी, उसने अपना नाम 'कानाई माष्टर' रक्खा था। इसीलिये बच्चा कहता है—

"आमी आज कानाई मास्टर
पड़ो मोर बे राल छानाटी,
आमी ओके मारिने मा बेंत
मिछि मिछि बसी निये काठी!
रोज रोज देरी करे आसे,
पाड़ाते देय ना ओ तो मन,
डान पा तुलिये तुले हाइ
जतो आमी बोली सुन् सुन्!
दिन-रात खेला खेला खेला,
लेखाय पड़ाय भारी हेला।
आमी बोली च छ ज झ ञ,
ओ केवल बोले म्यों म्यों।
प्रथम भागेर पाता खुले,
आमी ओरे बोझाई मा कतो

चुरी करे खासने कखनो
भालो होस गोपालेर मतो !
जतो बोली सब होय मिछे
कथा यदि एकटी ओ सुने !
माछ यदि देखेछे कोथाव
किछुई थाके ना आर मने !

चड़ाइ पाखीर देखा पेले
छुटे जाय सब पड़ा फेले !
यदि बोली च छ ज झ ञ
दुष्टुमि करे बोले म्यों !

आमि ओरे बोली बार बार
पड़ार समय तुमी पड़ो—
तार परे छुटी होये गले
खेलार समय खेला कोरो !
भालो मानुषेर मतो थाके
आड़े आड़े चाय मुख पाने,
एमनी से भान करे, जेनो
जा बोली बुझेछे तार माने !

एकटू सुयोग बुझे जेई
कोथा जाय आर देखा तेइ !
आमी बोली च छ ज झ ञ
ओ केवल बोले म्यों-म्यों !

(मैं आज कनाई मास्टर हूं, मेरे बिल्लीके बच्चे, पढ़ो। मैं उसे बेंत नहीं मारता, दिखाव भरके लिये एक लकड़ी लेकर बैठता हूं, समझी मां ! रोज देर करके आता है, पढ़नेमें उसका जी भी नहीं लगता। दाहिना पैर उठाकर जंभाई लेने लगता है चाहे कितना भी उसे समझाऊं ! दिनरात बस खेल-कूदमें पड़ा रहता है, पढ़ने-लिखनेकी ओर तो ध्यान देता ही नहीं। मैं जब कहता हूं, :च, छ, ज, झ, ञ, तब वह बस म्यों म्यों किया करता है। मां पहली किताबके पन्ने खोलकर मैं उसे समझाता हूं। कहता हूं, कभी चुराकर न खाना, गोपालकी तरह भला मानस बन। परन्तु चाहे जितना कहूं; एक भी बात उसके कानमें नहीं पड़ती। कहीं मछली देखी कि बस रहा सहा भी सब भूल गया। अगर कहीं उसने "चड़ाई" पक्षी देख लिया तो बस सब पढ़ना-लिखना छोड़कर दौड़ा। जब मैं कहता हू, च छ ज झ ञ तब वह बस म्यों-म्यों कहकर रह जाता है। मैं उससे बार-बार कहता हूं, पढ़नेके वक्त पढ़ा करो, जब छुट्टी हो जाय, तब खेलनेके वक्त खेलना। भलेमानसकी तरह बैठा रहता है, तिरछी निगाह करके मेरा मुंह ताकता है, ऐसा भाव बतलाता है जैसे उसका अर्थ सब समझता हो। जहां कहीं जरासा मौका मिला कि फिर उड़ जाता है, देखते ही देखते नजरसे गायब !)

कविवर रवीन्द्रनाथने बच्चोंकी भाषामें ऐसी कितनी कवितायें लिखी हैं। पढ़कर बच्चोंके स्वभावपर उनका विचित्र अधिकार देख मुग्ध हो जाना पड़ता है।

शृंगार।

जहां रवीन्द्रनाथने विश्व-प्रकृतिके शृङ्गार-भावका चित्रांकण किया है, वहां उन्होंने उसके कोमल सौन्दर्यकी जितनी विभूतियां हैं, उन्हें बड़ी निपुणताके साथ प्रस्फुट कर दिखाया है। उनकी यह कला बड़ी ही मनोहारिणी है। वे बाहरी सौन्दर्यके इधर उधर बिखरे हुए—प्रक्षिप्त अंशोंको जिस सावधानीसे चुनकर उनका एक ही जगह समावेश कर देते हैं, उनकी वही सावधानी और वही ढूंढ़-तलाश अन्तः सौन्दर्यके निरीक्षणमें भी पाई जाती है। उनकी अवलोकन-शक्ति इतनी प्रखर जान पड़ती है कि मानो उसके प्रकाशमें एक छोटीसे छोटी वस्तु भी नहीं छूटने पाती। जैसे पूर्णता स्वयं उन्हें अवलोकनकी राह बता रही हो। दूसरी खूबी, उनके वर्णनकी है। प्रकृतिका पर्यावेक्षण करनेवाला ही कवि नहीं हो जाता, उसे और भी बहुत सी बातोंकी नाप तोल करनी पड़ती है। एक ही शब्दके पर्यायवाची अनेक शब्द होते हैं। उनमें किस शब्दका प्रयोग उचित होगा, किस शब्दसे कवितामें भावकी व्यञ्जना अधिक होगी, इसका भी ज्ञान कवियोंको रखना

पड़ता है। शब्दोंकी इस परीक्षामें र.ा.न्द्रनाथ अद्वितीय हैं। आपसे पहले हेमचन्द्र, नवीनचन्द्र, माइकेल मधूसूदन,. आदि बंग भाषाके बहुत बड़े बड़े कवि हो गये हैं, परन्तु यह परख रवीन्द्रनाथकी जितनी जंची-तुली होती है,उतनी उनसे पहलेके किसी कविमें नहीं पाई जाती। छन्दोंके लिये तो रवीन्द्रनाथको आप रत्नाकर कह सकते हैं। इतने छन्दोंकी सृष्टि संसारमें किसी दूसरे कवि ने नहीं की। रवीन्द्रनाथके छन्दोंसे उनके भावोंकी व्यञ्जना और अच्छी तरह प्रकट होती है। जिस तरह, शब्दोंके बिना, रागिनीके सच्चे अलापसे उसका यथार्थ चित्र श्रोताओंके सामने अंकित हो जाता है, उसी तरह छन्दोंके आवर्तासे ही रवीन्द्रनाथकी कविताका भाव प्रत्यक्ष होने लगता है।

एक कविता है 'याचना'। कविता शृङ्गार-रसकी है, बहुत छोटी है। परन्तु उतने हीमें नायककी याचना पूरी हो जाती है। वह जितने तरहकी याचनाएं अपनी नायिकासे कर सकता है, सब उतने हीमें आ जाती हैं। तारीफ यह कि है तो शृङ्गार-रस, परन्तु अश्लील याचना कहीं नहीं होती। सब याचनाओंमें भावकी ही भिक्षा पाई जाती है। पढ़कर पाठकोंको फिर क्यों न भावावेश हो जाय ?

"भालो बेसे सखि निभृत यतने
आमार नामटी लिखियो—तोमार
मनेर मन्दिरे (१)।
आमार पराणे जे गान बाजिछे

ताहार तालटी सिखियो—तोमार
चरण-मंजिरे (२)।"

अर्थ—ऐ सखि ! प्यार करके, एकान्तमें, यत्न पूर्वक, अपने मनोमन्दिरमें, मेरा नाम लिख लेना (१)। मेरे प्राणोंमें जो संगीत बज रहा है, उसकी ताल, अपने पैरोंमें बजने वाले नूपुरों से सीख लेना (२)।

नायककी प्रार्थना कितनी सीधी है, परन्तु कहनेका ढंग ग़जब कर रहा है। मूल कवितामें कलाकी कहीं कोई कसर नहीं रहने पाई, बल्कि उसका रूप इतना सुन्दर अङ्कित हो गया कि बड़े बड़े वाक्योंकी प्रशंसा भी उसके आसन तक नहीं पहुंच पाती। भावोंके साथ रवीन्द्रनाथके छन्द और भाषा पर भी ध्यान दीजिये। जो जिसे प्यार करता है और दिलसे प्यार करता है, वह उसका नाम प्रकट नहीं होने देता। वह उसे हृदयके सबसे गुप्त स्थानमें छिपाये रहता है। नायिकासे नायककी यही याचना है। पद्यके दूसरे हिस्सेवाली नायककी याचना कलेजेमें चोट कर जाती है। उसके प्राणोंमें उसकी प्रियतमाकी जो रागिनी बज रही है—प्यारकी जो अलाप उठ रही है, उसकी ताल उसकी नायिकाके नूपुरोंमें गिरती है! कितनी बारीक निगाह है! प्रेमकी एक ही डोरके खिचावमें दो मनुष्योंकी सं-सृति हो रही है। नायकके गलेमें जिस प्रेमकी रागिनी बजती है, नायिकाकी गतिमें उसके नूपुर, प्रत्येक पदक्षेपके साथ मानों उसी रागिनीकी ताल दे रहे हैं।

फिर महाकवि लिखते हैं—

"धरिया राखियो सोहागे आदरे
आमार मुखर पाखीटी—तोमार
प्रासाद्-प्रांगणे (१)
मने करे सखि बांधिया राखियो
आमार हातेर राखीटी—तोमार
कनक—कङ्कणे (२)।"

अर्थ—मेरे बहुत ज्यादा बकवास करनेवाले इस पक्षीको सोहाग और आदरके साथ अपने प्रासादके आगनमें पकड़ रखना (१)। ऐ सखि, मेरे हाथकी इस राखीको, याद करके अपने सोनेके कङ्कनके साथ लपेट लेना (२)।

"आमार लतार एकटी मुकुल
भूलिया तूलिया राखियो—तोमार
अलक-बन्धने (१)।
आमार स्मरण-शुभ-सिन्दूरे
एकटी बिन्दु आंकियो—तोमार
ललाट-चन्दने (२)।"

अर्थ—मेरी लतासे एक कली भ्रमवशात् तोड़कर अपने जूड़ेमें उसे खोंस लेना (१)। मेरी स्मृतिका शुभ सिन्दूर लेकर, अपने ललाटके चन्दनके साथ, उसका भी एक बिन्दु बना लेना(२)

अपनी लतासे नायिकाको भ्रमवशात् या एकाएक (भूलिया) एक कली तोड़ लेनेके लिये अनुरोध करके 'भ्रमवशात्' या

(भूलिया) शब्दसे, कवि नायिका की भावुकता सिद्ध करता है। वह जान-बूझकर उससे कली इसलिये नहीं तुड़वाता कि उसकी नायिका उस समय उसीकी चिन्तामें बेसुध हो रही है। अतएव संस्कार वश कलीको तोड़कर जूड़ेमें खोंस लेनेके लिये अनुरोध करता है,—'भूलिया=भूलकर, उसके उसी भावकी सूचना देता है। जहां उसकी नायिकाका चन्दन-बिन्दु शोभा दे रहा है, उस ललाटमें अपनी स्मृतिके सिन्दूरका एक बिन्दु और बना लेनेकी प्रार्थना; हृदयके किस कोमल परदे पर अङ्गुली रखकर बोल बिलकुल साफ खोल देती है, पाठक ध्यान दें।

"आमार मनेर मोहेर माधुरी
माखिया राखिया दियोगो—तोमार
अङ्ग-सौरभे (१)।
आमार आकुल जीवन मरण
टूटिया लूटिया नियोगो—तोमार
अतुल गौरवे (२)।

अर्थ—मेरे मनके मोहकी माधुरी, ऐ सखि! अपने अङ्ग सौरभके साथ तेल और फुलेलके साथ मिलाकर रख देना (१)। मेरे व्याकुल इस जीवन और मरणको अपने अनुपम गौरवके साथ टूटकर लूट लेना (२)।

यहां हमें चौरपञ्चासिका वाले सुन्दर कविको याद आ गई। इस तरहका एक भाव उसकी भी अन्तिम प्रार्थनामें हमने पढ़ा था। उसके दो चरण हमें याद हैं। वह अपनी नायिकाको लक्ष्य

करके कहता है—जब मैं मर जाऊंगा तब मेरे शरीरके पाचों तत्व तेरी सेवा करें, यही ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है:—

"त्वद्वापीषु पयस्त्वदीय मुकुरे ज्योति स्त्वदीयांगणे।
व्योम्नि व्योम त्वदीय वर्त्मनि धरा त्वत्ताल वृन्तेऽनिलः॥

अर्थात् मेरे शरीरका जल भाग तेरी वापीमें चला जाय, ज्योतिका अंश तेरे आइनेमें जाय और तेरे आँगनके आसमान पर आकाश, तू जहां चलो तेरे उस रास्तेपर मृत्तिका और तेरे ताड़के पङ्खेमें मेरे शरीरका अनिल-भाग समा जाय। रवीन्द्रनाथ-के नायककी प्रार्थना इसी तरहकी है, परन्तु उसका ढङ्ग दूसरा है।

एक और कविता देखिये। शीर्षक है 'बालिका बधू'। अपने देशकी विवाही हुई छोटी छोटी बालिकाओंको बधूके वेशमें देखकर महाकवि कहते हैं—

१— ओगो वर, ओगो बधू,
एइ जे नवीना बुद्धि विहीना
ए तव बालिका बधू (१)।
तोमार उदार बातास एकेला
कतो खेला निये काराय जे बेला,
तुमी काछे एले भावे तुमी तार
खेलिवार धन सुधू,
ओगो वर ओगो बँधू (२)।

२— आनेना करिते लाज—

केशव बेश तार होले एकाकार
मने नाहीं माने लाज (३) ।
दिने शतवार भांगिया गड़िया,
धूला दिये घर रचना करिया,
भावे मने मने साधिछे आपन
घर करनेर काज
जाने ना करिते लाज (४)

३— कहे एरे गुरुजने
'ओजे तोर पति, ओ तोर देवता,
भीत होये ताहा सुने (५) ।
केमन करिया पूजिबे तोमाय
कोनो मते ताहा भाविया ना पाय,
खेला फेली कभू मने पड़े तार—
"पालिबो पराण पणे
जाहा कहे गुरु जने" (६) ।

४— वासक शयन परे
तोमार बाहुते बांधा रहिलेव
अचेतन घुम भरे (७) ।
साड़ा नाहीं देय तोमार कथाय
कतो शुभक्षण वृथा चलि जाय,
जे हार ताहारे पराले से हार
कोथाय खसिया पड़े

वासक शहन परे (८)।

५— सुधू दुर्दिने झड़े

—दस दिक त्रासे आंधारिया आसे

धरातले अम्बरे—

तखन नयने घूम नाई आर,

खेला धूला कोथा पड़े थाके तार,

तोमारे सबले रहे आंकड़िया

हिया कांपे थरे थरे—

दुःख दिनेर झड़े (९)।

६— मोरा मने करि भय

तोमार चरणे अबोध जनेर

अपराध पाछे होय (१०)।

तुमी आपनार मने मने हासो

एई देखितेई बुझी भाल बासो,

खेला घर द्वारे दांड़ाइया आड़े

किजे पाव परिचय,

मोरा मिछे करि भय (११)।

७— तुमी बुझियाछ मने,

एक दिन एर खेला घुचे जावे

ओइ तव श्रीचरणे (१२)।

साजिया यतने तोमारि लागिया

वातायन तले रहिबे जागिया
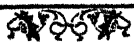
शतयुग करि मानिबे तखन
क्षणेक अदर्शने,
तुमी बुझियाछ मने (१३)।

८— ओगो वर ओगो बंधू,
जान जान तुमी—धूलाय बोसिया
ए बाला तोमार बधू (१४)।
रतन आसन तुमी एरी तरे
रेखेछो साजाय निर्जन घरे,
सोनार पात्रे भरिया रेखेछे
नन्दन-वन-मधू
ओगो बर ओगो बँधू (१५)।

अर्थः—ओ वर—ऐ मित्र! वह जो बुद्धिहीन नई बालिका तुम देख रहे हो, तुम्हारी बहू है (१)। तुम्हारी देहसे लग कर आई हुई उदार हवा इसे कितने खेलोंमें डालकर देर करा देती है कि क्या कहूं (यहां वरके उदार भावोंके कारण मानों बालिका बधूके खेलमें कोई बाधा नहीं पड़ती—जितनी देर तक उसका जी चाहता है, वह खेलती रहती है, यह भाव है) और जब तुम उसके पास आते हो तब वह तुम्हें भी अपने खेलकी वस्तु समझती है (२)।

२—वह भेष भूषा करना नहीं जानती, उसके गुथे हुए बालोंके खुल जाने पर भी उसे लज्जा नहीं होती (३)। दिन भरमें सौ वार वह घर बनाती और बिगाड़ती है, और धूलसे

फिर उसकी रचना करती है। वह मन-ही-मन सोचती है—यह मैं अपने घर और गृहस्थीका काम सम्भाल रही हूं (४)।

३—उससे उसके पूजनीय लोग जब कहते हैं—'अरी ये तेरे पति हैं—तेरे देवता हैं, तू इतना भी नहीं जानती', तब वह भयसे सिकुड़ जाती और उनकी बातें सुनती है (५)। परन्तु किस तरह वह तुम्हारी पूजा करे, सोचने पर भी तो इसका कोई उपाय उसकी समझमें नहीं आता। कभी खेल छोड़कर वह अपने मनमें सोचती है—"पूज्यजनोंके इस आदेशका मैं हृदयसे पालन करूंगी" (६)।

४—वासर-सेज पर तुम्हारी बाहोंमें बँधी रहने पर भी वह मारे नींदके बेहोश पड़ी रहती है (७)। फिर वह तुम्हारी बातोंका कोई जवाब नहीं देती, कितने ही शुभ मुहूर्त व्यर्थ बीत जाते हैं, जो हार तुमने उसे पहनाया वह न जाने सेजपर कहां खुलकर गिर जाता है (८)

५—आंधी जब चलने लगती है—घोर दुर्दिन आ जाता है—जब धरातल और आकाशमें त्रास छा जाता है—दसों दिशाएं अन्धकारसे ढक जाती हैं तब फिर उसकी आँख नहीं लगती, उसकी धूल और उसका खेल न जाने कहां पड़ा रहता है, बलपूर्वक वह तुम्हें पकड़े रहती है—सिमटती हुई तुमसे और भी सट जाती है; उस आंधी और दुर्दिनके समय उसका हृदय थर-थर कांपता रहता है (९)।

६—हमलोगोंके चित्तमें शङ्का होती है कि कहीं ऐसा न हो

कि यह नादान तुम्हारे श्रीचरणोंमें कोई अपराध कर बैठे (१०)। तुम अपने मन-ही-मन हँसते रहते हो, जान पड़ता है,—तुम यही देखना पसन्द भी करते हो, भला उसके घरौंधेके पास आड़में तुम क्यों खड़े होते हो ?—तुम्हें इससे कौन सी जानकारी हो जाती है ? हमलोग व्यर्थ ही घबराते हैं—न ? (११)।

—तुमने अपने मनमें समझ रक्खा है, एक दिन तुम्हारे श्रीचरणोंपर उसका खेल समाप्त हो जायगा (१२)। तब वह तुम्हारे लिये बड़े यत्नसे अपनेको सँवारकर झरोखेके पास जागती हुई बैठी रहेगी, तुम्हारे क्षण भरके अदर्शनको शतयुगों के बराबर—दीर्घ समझेगी, यह तुम समझे हुए हो (१३)

ओ वर—ओ मित्र ! तुम जानते हो, धूलमें बैठी हुई यह बाला तुम्हारी ही बधू है (१४)। इसीके लिये निर्जन भवनमें तुमने रत्नोंसे जड़ा हुआ आसन सजा रक्खा है और सोनेके पात्रमें नन्दन वनकी मधु भरकर रख दी है (१५)

यहां हमें अच्छी तरह मालूम हो जाता है कि महाकवि रवीन्द्रनाथ किस तरह चित्रका अवलोकन करते हैं, किस तरह हृदयके भीतरकी बातोंको समझते और शब्दोंमें उनकी यथार्थ मूर्ति उतार लेते हैं। बालिका बधू और उसके पतिके देव-भावों को किस खूबीसे चित्रित किया है—साद्यन्त स्वाभाविक और साद्यान्त मनोहर !

शृङ्गारकी एक कविता महाकविकी और बड़ी सुन्दर है, नाम है "रात्रे ओ प्रभाते"। इसमें युवक पति और युवती पत्नी के निश्छल प्रेमका प्रतिबिम्ब पड़ता है:—

१—कालि मधुयामिनीते ज्योत्स्नानिशीथे

कुञ्जकानने सुखे

फेनिलोच्छल यौवन सुरा

धरेछि तोमार मुखे (१)

तुमी चेये मोर आँखी परे

धीरे पात्र लयेछो करे

हेसे करियाछो पान चुम्बन भरा

सरस बिम्बाधरे

कालि मधुयामिनीते ज्योत्स्नानिशीथे

मधुर अवेश भरे (२)।

तव अवगुण्ठन खानि

आमी केड़े रेखे छिनु टानि

आमी केड़े रखेछिनु बक्षे तोमार

कमल-कोमल पाणि (३)।

भावे निमीलित तव नयन युगल

मुखे नाहीं छिलो वाणी (४)

आमी शिथिल करिया पाश

खुले दियेछिनु केशराश,

तव आनमित मुख खानि

सुखे थुयेछिनु बुके आनि,

तुमी सकल सोहाग सयेछिले, सखि

हासी-मुकुलित मुखे,
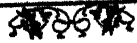
कालि मधुयामिनीते ज्योत्स्नानिशीथे
नवीन मिलन सुखे (५)।

२—आजि निर्मलवाय शान्त ऊषाय
निर्जन नदी तीरे
स्नान अवसाने शुभ्रवसना
चलियाछो धीरे धीरे (६)
तुमी वाम करे लोये साजि
कतो तुलेछो पुष्प राजि
दूरे देवालय तले ऊषार रागिणी
बाँसिते उठेछे बाजि
एई निर्मल वाय शान्त ऊषाय
जाह्नवी तीरे आजि (७)।
देवि तव सिँथी मूले लेखा
नव अरुण सिंदुर-रेखा
तव वाम बाहु बेड़ी शंख वलय
तरुण इन्दुलेखा (८)
एकि मङ्गलमयी मूरति विकाशि
प्रभाते दितेछे देखा (९)।
राते प्रेयसीर रूप धरि
तुमी एसे छो प्राणेश्वरि,
प्राते कखन देवीर वेशे
तुमी सुमुखे उदिछे हेसे;

आमी संभ्रम भरे रयेछि दांड़ाये
दूरे अवनत शिरे
आजि निर्मल वाय शान्त ऊषाय
निर्जन नदी तीरे (१०)।

(१) अर्थः—ऐ प्रिये ! कल बसन्तकी चाँदनीमें, अधरातके समय, उपवनके लता-कुंजके नीचे छलकती हुई फेनिल यौवनकी सुरा सुखपूर्वक मैंने तुम्हारे होठोंपर लगाई थी (२)। तुमने मेरी दृष्टिसे अपनी दृष्टि मिलाकर, धीरे धीरे वह सुरापात्र ले लिया था, फिर हसकर, मधुर आवेशसे भरकर, कल वसन्तकी चाँदनी अधरातमें, चुम्बनभरे अपने सरस बिम्बाधरोंसे उसका पान कर गई थीं (२)। मैंने तुम्हारा घूंघट खोल डाला था और तुम्हारे कमल-कोमल हाथको हृदयपर खींचकर रख लिया था (३)। उस समय तुम्हें भावावेश हो गया था, तुम्हारी दोनों आखोंकी अधखुली हालत थी और मुखमें एक शब्द न आ रहा था (४)। बन्धनोंको शिथिल करके मैंने तुम्हारी केशराशि खोल दी थी, तुम्हारे झुके हुए मुखको सुखपूर्वक हृदयसे लगा लिया था, सखी कल वसन्तकी चाँदनी अधरातमें नवीन मिलन सुखके समय, मेरे द्वारा किये गये इन सब सहागोंको हँस-हँसकर तुमने सहन-किया था—तुम्हारी हँसीकी कली त्यों की त्यों मुकुलित ही बनी रही—न मसली—न मसल जानेके दर्दमें आह भरनेके इरादे उसने मुंह खोला (५)।

आज इस बहती हुई साफ हवामें, शान्त ऊषाके समय,

निर्जन नदीके तट परसे स्नान समाप्त करके धीरे २ चली आ रही हो (६)। बायें हाथमें साजी लेकर तुमने तो ये बहुतसे फूल तोड़े, इस समय वह सुनो, दूरके उस देव-मन्दिरमें, वंशीमें, ऊषाकी रागिनी बज रही है और इस निर्मल वायु, शान्त ऊषा और निर्जन नदीमें भी उसकी तान समाई हुई है (७)। हे देवि! तुम्हारी मांगमें बालसूर्य-से दुरकी कैसी लाल रेखा खिंची हुई है। और तुम्हारी बांई बांहको घेरे हुए शंख-बलय तरुण इन्दु-सा शोभायमान हो रहा है (८)। यह क्या?—यह कैसी मङ्गल-मूर्तिका विकाश मैं इस प्रभातके समय देख रहा हूं (९)! ऐ प्राणेश्वरि! रातके समय तो प्रेयसीकी मूर्तिसे तुम मेरे पास आई थीं, सुबहको यह कब देवीकी मूर्तिमें हंस कर तुम्हारा उदय मेरे सम्मुख हुआ? आज इस निर्मल वायु, शान्त ऊषा और निर्जन नदी-तट परके समयमें मैं तुम्हारे सम्मानके भावोंमें सिर झुकाये हुए दूर खड़ा हुआ हूं (१०)।

इस कवितामें नारी-सौन्दर्यके दो चित्र दिखलाये गये हैं। इन दोनोंका समय कविताके शीर्षकसे ही सूचित हो जाता है। एक चित्र रातका है और दूसरा प्रभातके, इसीलिये इस कविता का नाम महाकविने 'रात्रे ओ प्रभाते' रक्खा है। दोनों चित्रोंकी विशेषता महाकविकी अमर लेखनीकी चित्रण-कुशलता को देखकर समझमें आ जाती है। वसन्तकी चाँदनी रातमें पतिके हाथोंसे यौवनको छलकती हुई सुराका प्याला पत्नी ले लेती है। यहां—
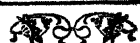
"तुमी चेये मोर आंखी परे
धीरे पात्र लयेछो करे।"—

महाकविके इस मनोराज्यकी जटिल किन्तु मोहिनी मायाकी ओर इतनी स्पष्ट संकेत देखकर मन मुग्ध हो जाता है। सहधर्मिणी यौवनका प्याला एकाएक नहीं ले लेती, उसके लेनेमें एक विज्ञान है, एक वैसी ही बात है जिसके चित्रणमें कवि सम्राट गोस्वामी तुलसी दास लिखते हैं—

बहुरि वदन - विधु अञ्चल ढाँकी।
पियतन चिते दृष्टि करि बाँकी॥
खञ्जन - मंजु तिरीछे नयननि।
निज पति तिनहिं कह्यो सिय सैननि॥—

गोस्वामीजीकी सीतामें पतिकी ओर निहारने पर चञ्चलता आती है, और उस समय वही स्वाभाविक था—परन्तु रवीन्द्रनाथकी पति-सुहागिनी यहां स्थिर है, धीर है, प्रेमकी अचल और गम्भीर मूर्त्ति है। वह पतिके मुखकी ओर ताकती है, पतिकी आंखोंकी राह जो आग्रह टपक रहा था, उसे समझकर चुपचाप प्याला ले लेती है और फिर हँसकर जिन अधरोंपर सैकड़ों चुम्बन मुद्रित हो रहे थे, उनसे उस यौवनसुराका पान कर जाती है। यह वह अपनी इच्छासे नहीं करती, पतिको सन्तुष्ट करनेके लिये करती है। फिर रात्रिकी केलि जब आरम्भके एक छोरसे चलकर समाप्तिके दूसरे छोर तक पहुंचती —प्रभात होता तब उस स्त्रीकी वह मूर्ति नहीं रह जाती। वह अपने पतिकी

दृष्टिमें देवी की मूर्तिसे आकर खड़ी होती है। सूर्यकी पहली किरण पेड़ोंके कोमल पल्लवों पर पड़ने नहीं पाती और उसका नहाना-धोना, फूल तोड़ना सब समाप्त हो जाता है। उसका पति स्वयं कहता है —

"राते प्रेयसीर रूप धरि
तुमी एसो छो प्राणेश्वरी
प्राते कखन देवीर वेशे
तुमी सुमुखे उदिले हेसे"

सुबहके समय अपने पतिके पास वह हँसकर खड़ी होती है, परन्तु उसका पति उसके सम्मानके लिये सिर झुका लेता है। यहां महाकवि पवित्रताकी महिमा दिखा रहे हैं। यह वही स्त्री है, जिसने अपने स्वामीकी आज्ञा मानकर रातको उसके हाथसे यौवन-सुराका प्याला लेकर विना किसी प्रकारके संकोचके सुरा पी गयी थी और आज सुबहको यह वही स्त्री है :जिसे उसका पति सिर झुकाकर सम्मानित कर रहा है। इस कवितामें एक ही स्त्रीके दो रूपोंकी वर्णनाएं हैं, एक उसके रातके स्वरूप की—प्रेमिकाके मानवीय सौन्दर्यकी और दूसरी उसके सुबहके स्वरूपकी—देवी-सौन्दर्यकी। इन दोनों सौन्दर्योंको विकसित कर दिखानेमें रवीन्द्रनाथ को पूरी सफलता हुई है। इस पर हम ज्यादा कुछ इसलिये नहीं लिख सकते कि रवीन्द्रनाथ स्वयं अपनी कवितामें कलाको विकसित रूप देते हैं। जहां कवि संक्षेपमें वर्णन करते हैं वहां टीकाकारोंकी बन जाती है, वे उसके मन-

माना अर्थ करने लगते हैं। परन्तु रवीन्द्रनाथका यह आप गुण समझिये या दोष, वे अपनी कवितामें टीकाकारोंके लिये 'किन्तु' या 'परन्तु' भी नहीं छोड़ जाते।

शृङ्गार पर महाकवि रवीन्द्रनाथकी एक और गजब की कविता देखिये, नाम है 'ऊर्वशी'। इसमें वारांगणा सौन्दर्य है। स्वाभाविकता वही जो उनकी हर एक कवितामें बोलती है।

१—न हो माता, न हो कन्या, न हो बधू, सुन्दरी रूपसि,
हे नन्दनवासिनी ऊर्वशि (१)
गोष्ठे जबे सन्ध्या नामे श्रान्त देहे स्वर्णांचलखानी
तुमी कोनो गृह प्रान्ते नाहीं जाल सन्ध्या दीप खानि;
द्विधाय जड़ित पदे, कम्प्रवक्षे नम्र नेत्र पाते
स्मिर्थ हास्य नाहीं चलो सलज्जित वासर शय्याते
स्तब्ध अर्द्ध राते (२)।
ऊषार उदय सम अनवगुण्ठिता
तुमी अकुण्ठिता (३)।
२—वृन्तहीन पुष्पसम आपनाते आपनी विकाशि
कबे तुमी फूटिले ऊर्वशि (४)!
आदिम वसन्तप्राते, उठेछिले मन्थित सागरे,
डानहाते सुधापात्र, विषभाण्ड लये बाम करे;
तरंगित महासिन्धु मंत्रशान्त भुजंगेर मत
पड़ेछिलो पदप्रान्ते, उच्छ्वसित फणा लक्ष शत
करि अवनत (५)।

कुन्दशुभ्र नग्नकान्ति सुरेन्द्र वन्दिता,
तुमी अनिन्दिता (६)।

३—कोनो काले छिले नाकि मुकुलिका बालिका बयसी
हे अनन्त यौवना ऊर्वशि (७)!
आंधार पाथार तले कार घरे बसिया एकेला
माणिक मुकुता लये करेछिले शैशवेर खेला,
मणि दीप दीप्त कक्षे समुद्रेर कल्लोल संगीते
अकलङ्क हास्यमुखे प्रवालपालंके घुमाइते
कार अङ्कटीते (८)!
जखनि जागिले विश्वे, यौवने गठिता
पूर्ण प्रस्फुटिता (९)।

४—युग युगान्तर होते तुमी शुधू विश्वेर प्रेयसी
हे अपूर्णशोभना ऊर्वशि (१०)!
मुनिगण ध्यान भांगि देय पदे तपस्यार फल,
तोमारि कटाक्ष घाते त्रिभुवन यौवन चञ्चल,
तोमार मदिर गन्ध अन्ध वायु बहे चारि भिते,
मधुमत्त भृङ्गसम मुग्ध कवि फिरे लुब्ध चित्ते,
उद्दाम संगीते (११)।
नूपुर गुंजरि जाव आकुल-अञ्चला
विद्युत्-चञ्चला (१२)।

५—सुर सभा तले जबे नृत्य करो पुलके उल्लसि
हे विलोल-हिल्लोल ऊर्वशि !

छन्दे छन्दे नाचि उठे सिन्धु माझे तरंगेर दल,
शष्य शीर्षे सिहरिया कांपि उठे धरार अञ्चल,
तव स्तनहार होते नभस्तले खसि पड़े तारा,
अकस्मात् पुरुषेर वक्षो माझे चित्त आत्म हारा,
नाचे रक्त धारा (१३)।
दिगंते मेखला तप टूटे आचम्बिते
अयि असम्वृते (१४)!
६—स्वर्गेर उदयाचले मूर्तिमती तुमी हे ऊषसी,
हे भुवन मोहिनी ऊर्वशि (१५)!
जगतेर अश्रु धारे धौत तव तनुर तनिमा,
त्रिलोकेर हृदिरक्ते आंका तव चरण-शोणिमा,
मुक्तवेणी विवसने, विकसित विश्व-वासनार
अरविन्द माझ खाने पादपद्म रखेछो तोमार
अति लघुभार (१६)
अखिल मानस स्वर्गे अनन्त रंगिणी,
हे स्वप्न संगिनि (१७)
७—ओइ सुनो दिशे दिशे तोमा लागी कांदिछे क्रन्दसी—
हे निष्ठुरा वधिरा ऊर्वशि (१८)
आदियुग पुरातन ए जगते फिरिबे कि आर,—
अतल अकूल होते सिक्त केशे उठिबे आबार?
प्रथमसे तनुखानि देखा दिबे प्रथम प्रभाते,
सर्वाङ्ग कांदिबे तव निखलेर नयन-आघाते

वारिबिन्दु पाते (१६)
अकस्मात् महाम्बुधि अपूर्व संगीते
रबे तरंगिते (२०)
८—फिरिबे ना फिरिबे ना—अस्तगेछे से गौरव राशि
अस्ताचलवासिनी ऊर्व्वशि (२१) !
ताई आजि धरातले वसन्तेर आनन्द-उच्छ्वासे
कार चिरबिहेर दीर्घश्वास मिशे बहे आसे,
पूर्णिमा-निशीथे जबे दश दिके परिपूर्ण हासी
दूर स्मृति कोथा होते बाजाय व्याकुल करा बांसी
झरे अश्रु राशि (२२)
तबू आशा जेगे थाके प्राणेर क्रन्दने
अयि अबन्धने (२३) !

अर्थ:—

१—नन्दनवनवासिनी ओ रूपवती ऊर्व्वशी ! तुम न माता हो, न कन्या हो और न बधू हो (१)। थकी देह पर सोनेका आंचल खींचकर सन्ध्या जब गौवोंके चरागाहमें उतरती है, तब ऐ ऊर्व्वशी ! तुम किस घरके कोनेमें शामका दीपक नहीं जलाती —न संकोचवश जकड़े हुए पैरोंसे, कांपते हुए कलेजेसे, नीची निगाह करके मन्द-मन्द हसती हुई, अधरातके सन्नाटेमें प्रियकी सेजकी ओर लज्जित भावसे जाती हो (२)। तुम्हारा तो घूंघट सदा उसी तरह खुला रहता है जैसे ऊषाका उदय, और तुम सदा ही अकुण्ठित रहती हो (३)।

२—विना वृन्तके फूल की तरह, अपने ही में अपनेको विकसित करके, ऐ ऊर्वशी! तुम कब खिली (४)? आदिम वसन्तके प्रभात कालमें मथे हुए सागरसे तुम निकली थीं, अपने दाहिने हाथमें सुधापात्र और बायें में विषका घट लेकर; तरंगित महासिन्धु मन्त्रमुग्ध भुजङ्ग की तरह अपने लाखों उच्छ्वासित फनोंको झुकाकर तुम्हारे श्रीचरणोंके एक किनारे पर पड़ा हुआ था (५)। कुन्दके समान शुभ्र तुम्हारी नग्न कान्तिको चाह सुरपति इन्द्रको भी रहती है, तुम्हारी भला कौन निन्दा कर सकता है (६)।

३—ऐ ऊर्वशी! तुम्हारे इस यौवनका क्या कभी अन्त भी होता है?—न, अच्छा माना कि तुम्हारा यौवन अनन्त है, परन्तु यह तो बताओ, कलीकी तरह कभी तुम बालिका भी थीं या नहीं?(७) अतलके अन्धकारमें तुम किसके यहां अकेली बैठी हुई मणियों और मुक्ताओंको लेकर अपने शैशवका खेल करती थीं? —मणियोंके दीपोंसे प्रदीप भवनमें समुद्रके कल्लोलोंके गीत सुन-कर निष्कलंक मुखसे हँसती हुई प्रवालोंके पलंग पर तुम किसके अङ्कमें सोती थीं? (८)। इस विश्वमें जब तुम्हारी आंखें खुलीं, तब तुम्हारा यौवन गठित हो चुका था—तुम बिलकुल खिल गई थीं (६)।

४—अपूर्व-शोभामयी ऐ ऊर्वशी! युग-युगान्ततरोंसे तुम इस विश्वकी प्रेयसी हो, बस (१०)। ऋषि और महर्षि ध्यान छोड़कर अपने तपस्याका फल तुम्हारे श्रीचरणोंको अर्पित कर

देते हैं, तुम्हारे कटाक्षकी चोट खाकर यौवनके प्रभावसे तीनों लोक चञ्चल हो उठते हैं, तुम्हारी शराब-जैसी नशीली सुगन्धको अन्ध वायु चारों ओर ढोये लिये जा रहा है और मधु पीकर मस्त हुए भौरोंकी तरह कवि तुमपर मुग्ध और लुब्धचित्त होकर उद्दाम संगीत गाते हुए घूमते हैं (११)। तुम अपने नूपुर बजाती हुई, अञ्चलको विकल करके, बिजलीकी तरह चञ्चल गतिसे कहीं चली जाती हो (१२)।

५—देहमें लोल हिलोरोंका नृत्य दिखाने वाली ऐ ऊर्वशी! जब तुम देवतोंकी सभामें पुलकित और हुलसित होकर नृत्य करती हो तब तुम्हारे छन्द-छन्द पर सिन्धुमें तरंगें नाच उठती हैं,—शष्यके शीर्षों में (बालियोंमें)—धराका अञ्चल कांप उठता है,—तुम्हारे उन्नत उरोजों पर शोभा देनेवाले हारसे छूटकर आकाशमें तारे टूट गिरते हैं,—एकाएक पुरुषोंके हृदयमें चित्त अपनेको भूल जाता है,—नस-नसमें खूनकी धारा बह चलती है (१३)। ओ अपनेको न संम्भाल सकने वाली! एकाएक दिगन्तमें तेरी मेखला टूट गिरती है (१४)।

६—ऐ भुवनमोहिनी ऊर्वशी! स्वर्गके उदयाचलमें तुम मूर्तिमति ऊषा हो (१५)। तुम्हारे देह की तनुता (नजाकत) संसारके आंसुओंकी सरिताके तट पर धोई गई है, तुम्हारे तलवे की ललाई तीनों लोकके हृदय-रक्तसे रञ्जित की गई है, बालोंको खोलकर खड़ी हुई ओ विवस्त्र ऊर्वशी! विश्व-वासनाके विकसित अरविन्द पर तुम अपने अति लघुभार चरणोंको रक्खे हुए हो(१६)

ऐ मेरी स्वप्नकी संगिनी! सम्पूर्ण संसारके मानस-स्वर्गमें तुम अनन्त रंग दिखला रही हो (१७)।

७—ऐ निष्ठुर बधिर ऊर्वशी! वह सुनो, तुम्हारे लिये चारों ओरसे रोदन उठ रहा है (१८)। पुरातन आदि युग क्या फिर इस संसारमें लौटेगा?—अछोर अतलसे ऐ सिक्तकेशिनी क्या तू फिर उमड़ेगी? प्रथम प्रभातमें वह प्रथम तनु क्या देखनेको फिर मिलेगा?—जब निखिलके कटाक्ष-प्रहारसे और गिरते हुए वारि-विन्दुओंके आघातसे तुम्हारा सर्वाङ्ग रोता रहेगा (१६)। महासागर एक अपूर्व संगीतके साथ अकस्मात् तरंगित होता रहेगा (२०)।

८—ऐ अस्ताचल-वासिनी ऊर्वशी! उस गौरव-राशिका अस्त हो गया है,—अब वह न लौटेगा (२१)। इसी लिये आज पृथ्वीमें वसन्तके आनन्दोच्छ्वासके साथ न जाने किसके चिर विरहका दीर्घ श्वास बहा चला आ रहा है, पूर्णिमा रात्रिमें जब दसों दिशाएं हास्यसे पूर्ण हो जाती हैं, तब न जाने दूरस्मृति कहांसे व्याकुल कर देने वाली वंशी बजाती रहती है, आंसू झरते रहते हैं (२२)। ओ बन्धन मुक्त ऊवशी, प्राणोंके क्रन्दनमें भी आशा जागती रहती है (२३)।

"ऊर्वशी" रवीन्द्रनाथकी एक अनुपम सृष्टि है। इसमें शृङ्गारको महाकविकी लेखनीने पराकाष्टा तक पहुंचा दिया है। रवीन्द्रनाथके समालोचक टमसन साहब समालोचनाके लिये जिन अजित बाबूकी जगह-जगह पर तारीफ करते हैं, अजित
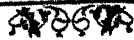
बाबूने खुद लिखा है—"ऊर्वशीमें सौन्दर्यबोधका जैसा परिपूर्ण प्रकाश है वैसा योरपके साहित्य भरमें मिलना मुश्किल है।" अजित बाबूकी राय, सम्भव है कि सच हो। परन्तु दुःख है, उन्होंने कविताके गुणोंका विश्लेषण करके उसकी श्रेष्ठता सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं की, न एक ही ढंगकी यूरोपिय कविताओंका उद्धारण करके तुलनात्मक विचार करनेका कष्ट उठाया है। कुछ भी हो, ऊर्वशीके चित्रचित्रणमें महाकविकी एक अद्भुत शक्ति लक्षित होती है, इसमें सन्देह नहीं। देव-सौन्दर्यमें देवभावोंका विकास कर दिखाना बहुत सीधा है। ऐसा तो प्रायः सभी कवि कर सकते हैं। हिन्दीमें शुद्ध शृङ्गार और स्वकीयाके वर्णनमें सफे-के-सफे रंग डाले गये हैं, यही बात संस्कृतमें भी है। परन्तु जहां परकीया नायिकाओं या वारांगणाओंका वर्णन आया है, वहां तो कवि नायिकाओंसे बढ़कर अश्लीलता करते हुए पाये जाते हैं—"दे मागदे दे मागादे करे रतिमें तगादे हैं", ये सब उनके भावोंके जीते जागते चित्र हैं। यह हम मानते हैं कि मनुष्य स्वभावका यह भी एक चित्र है, अश्लील भले ही हो, पर झूठ नहीं; अतएव साहित्यमें इसे भी स्थान मिलना चाहिये। यह बात और है। हम पहले ही लिख चुके हैं कि अश्लीलमें शील और, कुरूपमें सौन्दर्य, विकारमें निर्विकार की व्यञ्जना और मनोहर होती है और वह भी सत्य है; अतएव वह अधिक हृदय ग्राह्य है। कवि-कुल चूड़ामणि कालिदासने, कविराज राजि मुकुटालंकार हीरःकण श्रीमान श्रीहर्षने
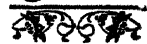
और इस तरह अनेक संस्कृतके महारथि कवियोंने कुल-काम-नियोंके अन्तःपुरकी लीलाएं लिखते हुए अश्लीलताको हृदय तक पहुंचा दिया है,—"यदि पीनस्तनीं पुनरहं—पश्यामि, मन्मथ शशानल पीड़ितानि गात्राणि सम्प्रति करोमि सुशीतलानि,—बेचारे अपने हृदयकी बात 'बेलाग' कह डालते हैं,—फिर उनके वंशज हिन्दीवाले—अपनी पैत्रिक सम्पत्तिका अधिकार क्यों छोड़ देते ? —"स्वधर्मे मरणं श्रेयः"। अस्तु।

'ऊर्वशी'के आरम्भमें वेश्या-सौन्दर्यपर बड़ी सावधानीसे रवीन्द्रनाथकी तूलिका संचालित होती है। उस नन्दन-वासिनीमें न वे मातृभाव पाते हैं, न कन्या भाव, न बधूभाव। वह कुल-वधूकी तरह लजाती हुई अधरातके सन्नाटेमें अपने प्रियतमकी सेजके पास नहीं जाती; वह घूंघटसे कभी मुंह नहीं मूंदती; ऊषाके उदयकी तरह उसका मुंह खुला रहता है; उसमें कुण्ठा नहीं है—किसीका दबाव नहीं है। महाकविकी उपमा "ऊषाका उदय" देखने लायक है। उपमा चोट कर जाती है, इतनी जंची तुली हुई है कि जान पड़ता है इससे बढ़कर और कोई उपमा यहांके लिये उपयोग्य नहीं। ऊषा स्वर्णाभा है, मधुर है, स्निग्ध है, मनोहरा है और सबकी दृष्टिमें पड़ती है, उसमें अवगुण्ठन, घूंघट या परदा नहीं; यही सब बातें ऊर्वशीमें भी हैं; वह स्वर्णवर्णा है, मनोरमा है और सबके लिये समभावसे मुक्तमुखी है।

ऊर्वशीके हर एक पदबन्धमें, उसके एक-एक भावपर दृष्टि डाली गई है और महाकविकी कविता-किरण उनके प्रत्येक विचार
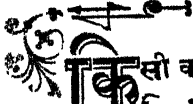
में ज्योति की रेखा खींच देती है । रम्भा जिस तरह चौदह रत्नोंके साथ समुद्रसे निकली थी, उसी तरह ऊर्वशीकी उत्पत्ति-कल्पना भी महाकवि सिन्धुके विशाल गर्भसे करते हैं । उसे अनन्त यौवना कहकर जब उसीसे उसके बाल्यकी बात पूछते हैं, मुकुलिता बालिकाके घरकी, उसके क्रीड़ाओंकी, प्रवाल-पलंग पर सोनेकी बात पूछते हैं तब कल्पना अपनी मोहिनीमें डालकर क्षणभरमें मुग्ध कर लेती है, और पूर्ण यौवनमें गठित करके उस सोती हुई को एकाएक संसारकी आश्चर्य्य भरी दृष्टिके सामने ला खड़ा करके तो गजब कर देते हैं । जहां लुब्धकवि, मधु पीकर मतवाले हुए भौंरोंकी तरह, गाते हुए उसके पीछे पीछे चलते हैं, वहां उसके नूपुरोंको बजाकर हिलोरोंसे अञ्चलको विकल करके बिजलीकी गतिसे गायब हो जाना वास्तवमें वेश्या-स्वभावका एक बहुत ही सुन्दर दृश्य दिखा जाता है। देवसभाके नृत्यका दृश्य भी बहुत ही चित्ताकर्षक है । इस सौन्दर्य्यका अन्त दुखान्त है ; यहां कलाका उत्कृष्ट परिचय मिलता है । वेश्याओंके सौन्दर्य्यका अन्त एक तो यों भी दुःखमय होता है,परन्तु यहां महाकवि एक दूसरी कल्पनासे उसे दुःखमय कर देते हैं । वह दुःख ऊर्वशीके लिये नहीं है कविके लिये है । इस सौन्दर्य्यको वे पुरातन युगकी कल्पनामें डुबो देते हैं । उस गौरव-राशिके अस्त हो जानेकी याद कविको रुला देती है । फिर वसन्तकी हवामें विरहकी सांस बह चलती है और हृदयके रोदनमें एक आशाको जगाकर मुक्त ऊर्वशीका सौन्दर्य्य समाप्त हो जाता है । यहां ऊर्वशीकी सुन्द-

रताकी इतनी मधुर वर्णना भी कविको प्रसन्न नहीं कर सकती,—वे वह युग चाहते हैं—सत्यं-शिवं-सुन्दरम्-वाला युग ; इसी लिये कविताके वेश्या-सौन्दर्यमें भी सत्यं-शिवं सुन्दरम् की अमर छाप लग गई है और नश्वरमें अविनश्वरकी ज्योति आ गई है ।
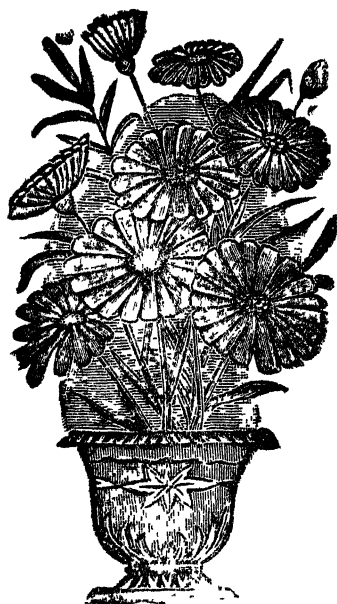
संगीत-काव्य ।

किसी कविमें एक साथ ही बहुतसे गुण नहीं मिलते। कितने ही शब्दशिलपी ऐसे देखे गये हैं जिनमें संगीतका नाम मात्र भी न था। शब्दोंके मायाजालकी रचना करते हुए ही उन्होंने अपना सम्पूर्ण समय और सारी एकाग्रता खर्च कर दी है। जो लोग अपनी या किसी दूसरे की 'कविताएं' सस्वर पढ़ लेते हैं, मशायरेमें अपना सुकोमल स्वर सुनाकर श्रोताओंको मुग्ध कर लेते हैं, वे सुकण्ठ चाहे भले हो हों पर वे संगीत मर्मज्ञ नहीं। जिस तरह अच्छी कविता लिखनेके लिये पिंगल और अलङ्कार-शास्त्रका जानना अत्यावश्यक है, उसी तरह संगीत शास्त्रका ज्ञान प्राप्त करने या सुगायक बननेके लिये राग-रागिनियोंके स्वरूप, उनके स्वरोंकी पहचान, समयका निर्देश, ताल और मात्राओंकी सूझ और आवश्यक सूक्ष्मातिसूक्ष्म और और विषयोंका अधिकार प्राप्त करना भी बहुत ही जरूरी है। अतएव कहना चाहिये, कविताकी तरह संगीतको भी एक अलग शाखा है और उसके पठन और अनुशीलनमें कदाचित् कविताको अपेक्षा अधिक समय लग जाता है। और यही कारण अक्सर

कवियोंको संगीत शास्त्रके अथाह सागरमें आत्मसमर्पण करते हुए हतोत्साह कर देता है।

हिन्दी-साहित्यमें जिन प्रसिद्ध कवियोंने घनाक्षरी, सवैया, दोहा, सोरठा और चौपाई आदि अनेकानेक छन्दोंकी सृष्टि की है, बहुत सम्भव है, सभास्थलमें वे सस्वर उन्हें गाते भी रहे हों, और चूंकि आज कल मशायरेमें अक्सर कविता गाकर पढ़नेका रिवाज प्रचलित है,—साधारणसे लेकर अच्छेसे अच्छे मनुष्य कविता को गाकर पढ़ते हैं, अतएव वे प्राचीन कवि भी जिनसे उत्तराधिकारके रूपमें कविताको गाकर पढ़ना हमें प्राप्त हुआ है और हम अब भी उसकी मर्यादाको पूर्णवत् अचल और अखण्डनीय बनाये हुए हैं, कविताका पाठ गाकर ही करते रहे होंगे। परन्तु यह मानी हुई बात है कि कविता एक और कला है और संगीत एक और। अतएव यह निःसन्देह है कि अच्छी कविता लिखने वाले किसी कविके लिये अच्छा गा लेना कोई ईश्वरीय नियम नहीं। तात्पर्य यह कि कवि होकर,साथ ही कोई गवैया भी नहीं बन सकता;परन्तु कविताकी तरह,सीखकर गानेकी बात और है। यहां मैं यह नहीं सिद्ध कर रहा कि आज कलके मशायरेमें ब्रह्मभोजके कराह मलते समयकी किरकिरी आवाजको मात करने वाले कविता गायक कवियोंकी तरह पिछले जमानेके सभी कवि थे; नहीं सूरदास जैसे सुगायक सिद्ध महाकवि भी हिन्दीमें हो गये हैं। यहां इस कथनमें मेरा लक्ष्य यह है कि शब्द-शिल्पी संगीत-शिल्पियोंकी नकल न करें तो बहुत अच्छा हो। कविता भाव-

त्मक शब्दोंकी ध्वनि है, अतएव उसकी अर्थ-व्यञ्जनाके लिये भाव पूर्वक साधारणतया पढ़ना ही ठीक है, किसी अच्छी कविताको रागिनीमें भरकर स्वरमें माजनेकी चेष्टा करके उसके सौन्दर्यको बिगाड़ देना अच्छी बात नहीं।

ठीक यही बात गानेवालेके लिये भी है! उसके पास स्वर है, पर शब्द नहीं। उसके स्वरकी धारा बड़ी ही साफ है, परन्तु जिन शब्दवीचियोंकी सहायतासे उसकी क्रीड़ा लक्षित हो रही है, उनमें वैसी एकता, सौन्दर्य-शृङ्खला और चमक बिलकुल नहीं है। कर्मनासाके जलकी तरह उन्हें देखकर लोग उनसे तृष्णा-निवृत्तिकी आशा छोड़ देते हैं—उनमें वैसी कोई शक्ति नहीं जो प्राणोंमें पैठकर उन्हें शीतल कर सके। हम देखते हैं, गवैयोंके रचे हुए संगीतके जितने भी काव्य हैं, उनका अधिकांश नीरस है—मानो स्वरकी लड़ीको पूरा करनेका ही उद्देश किसी तरह उनसे निकाला गया है—अलावे इसके कविताकी दृष्टिसे उनमें कोई दम नहीं।

हिन्दीमें सूर, कबीर, तुलसी और मीराबाई आदि बहुतसे महापुरुष ऐसे हो गये हैं जिन्हें हम समस्वरसे शब्द-शिल्पी भी कहते हैं और सुगायक भी; मीरां और सूरके लिये तो केवल यह कहना कि अच्छा गाते थे, अपराध होगा, ये संगीत-सिद्ध थे,—संगीतको उस कोमलता तक पहुंचे हुए थे जहां परम कोमल सच्चिदानन्द भगवान श्रीकृष्णकी स्थिति है।

इस बीसवीं सदीके लिये वंग-साहित्यमें जिस तरहके

संगीत-मर्मज्ञकी आवश्यकता थी, महाकवि रवीन्द्रनाथके द्वारा वह पूरी हो गई। रवीन्द्रनाथ जितने हो बड़े शब्द-शिल्पी हैं उतने ही बड़े संगीत-विशारद भी हैं; बल्कि उनके लिये यह कहना चाहिये कि संसारमें श्रेष्ठ स्थान उन्हें जिस पुस्तकके द्वारा प्राप्त हुआ है, वह संगीतकी ही है—"गीताञ्जली" भाव भाषा और स्वरके समावेशसे जिस स्वर्गीय छटाका उद्बोधन होता है, महाकवि रवीन्द्रनाथने बड़ी निपुणतासे उस संसारके सामने ला रक्खा है।

एक वार स्वर्गीय डी० एल० राय महाशयके सुपुत्र बाबू दिलीपकुमार रायने महात्मा गांधीसे मिलकर कला और संगीत के सम्बन्धमें उनसे कुछ प्रश्न किये थे; महात्माजीने कहा, मैं उस कला और उस संगीतका आदर करता हूं जो कुछ चुने हुए आदमियोंके लिये न होकर सर्वसाधारणके लिये हो। इसपर दिलीपबाबूका उत्तर बड़ा ही सुन्दर हुआ था। उन्होंने कहा, "इस तरह कलाको उत्कर्ष प्राप्त करनेकी जगह कहां रह जाती है? जो चीज सर्वसाधारणकी है, वह अवश्य ही असाधारण नहीं हो सकती और जिसके असाधारणता नहीं है, वह आदर्श भी नहीं है; और यदि आदर्श रहा तो साधारण जनोंके उन्नत होनेका लक्ष्य भी नहीं रह जाता; साधारण मनुष्योंकी उन्नत्ति का आदर्शके न रहने पर द्वार ही रुक जाता है।

दिलीपबाबूका भाव हृदयसे स्वागत करने योग्य है। पूर्व और पश्चिमके पर्यटनसे संगीतके सम्बन्धमें दिलीपबाबूका ज्ञान कितना बढ़ा-चढ़ा है, यह उनके लेखोंसे मालूम हो जाता है। एक

जगह उन्होंने हिन्दी-संगीतके साथ बंगला-संगीतकी तुलना करते हुए लिखा है—"हिन्दी-संगीत बंगला-संगीतसे बहुत ऊंचा है, बंगालियोंको अभी बहुत कालतक हिन्दी भाषी गवैयों के चरणों पर बैठकर शिक्षा ग्रहण करनी होगी।" दिलीपबाबूके वाक्य मैं अपनी स्मृतिसे लेकर उद्धृत कर रहा हूं, इस समय उनके लेख मेरे पास नहीं है; इन वाक्योंमें शब्दोंकी एकता चाहे न हो पर उनके भाव ऐसे ही हैं, इसपर मुझे दृढ़ विश्वास है। दिलीपबाबूके ये शब्द बहुत ही जचे तुले और सहृदयताके सूचक हैं, इनसे दिलीपबाबूकी निष्पक्ष समालोचनाका भी पता चल जाता है। एक दिन आपसमें बातचीत हो रही थी कि यही राय "आमार विज्ञान"के लेखक पण्डित रघुनन्दनजी शर्माने जाहिर की। हम यह भी देखते हैं कि अच्छे बंगाली गवैये ध्रुवपद-धम्मार अक्सर हिन्दीमें गाते हैं; फिर उनका अपनी भाषाके संगीतका प्रेम एक तरह छूट जाता है।

हिन्दी-संगीतकी योग्यता पर अब इस समय अधिक लिखने की जगह नहीं है। परन्तु यहां एक बात बिना कहे नहीं रहा जाता। पश्चिमके संगीतज्ञोंको भारतके संगीतसे अभी तक विशेष प्रेम नहीं हुआ। भारतके कुछ नामी उस्ताद योरप हो आये हैं, परन्तु उनके वाद्यका प्रभाव अभी वहां उतना नहीं पड़ा जितने की आशा की जाती है। प्रभाव न पड़नेके मुख्य दो कारण हैं। पहला यह कि भारतके रागों और रागिनियोंको वे समझ नहीं सकते,—इनसे उनके हृदयमें न तो किसी भावका

उद्रेक होता है, न कोई रससंचार; दूसरी बात यह है—तान मुरकीमें वहां वालोंको इतना अधिक स्त्रीत्व दिखलाई पड़ता है कि वे वीर जातियोंके वंशज इसका सहन नहीं कर सकते; यहांके नृत्यकलाको भी वे लोग इसी दृष्टिसे देखते हैं, अन्यथा यहांके नृत्य और संगीतसे अपने साहित्यमें कुछ लेनेकी चेष्टा करते। संगीतकी समालोचनामें योरपवाले वास्तवमें भूल करते हैं, और कुछ अंशोंमें हमारी भी भूल है। हमारे यहां भैरव, मालकोस, दीपक, हिन्डोल आदि रागोंके जैसे स्वरूप चित्रित किये गये हैं, उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकेगा कि इनमें स्त्रीत्व है; भैरवमें तो पुरत्वका विकास इतना अधिक करके दिखाया गया है कि संसारमें उस तरहका मस्त और दुनियांको तुच्छ समझने वाला पुरुष संसारकी किसी भी जातिमें न रहा होगा। भैरव-राग के अलापने पर वैसा ही भाव हृदयमें पैदा हो जाता है। हमारे यहां, ध्रुपद-धम्मार आदि तालोंमें स्त्रीत्वका तो कहीं निशान भी नहीं है। इनमें गाते समय गवैयेको हमेशा ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं ध्रुपद गाते हुए स्वरमें कम्पन हो जाय—यानी आवाज सदा भरी हुई और सीधी निकलती रहे, उसके कांपनेसे स्त्रीत्वके आ जानेका भय है। जो लोग इसका निर्वाह नहीं कर सकते, वे चूकते हैं। हमारे यहां मृदङ्गके बोल भी पुरुषत्वके उद्दीपक हैं। जबसे राग रागिनियोंकी खिचड़ी पकी, ग़ज़ल-युग आया, तबसे संगीतमें स्त्रीत्वका प्रभाव बढ़ा है।

शब्द-शिल्पी होकर संगीतको कलाके शीर्षस्थान तक ले आने
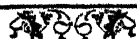
वाले, स्वरकी लड़ीमें भाव भरे उत्तमोत्तम शब्द पिरोने वाले, हर एक रस और हर एक रागिनोमें कविता और संगीत कलाके दो पृथक चित्रोंमें समान तूलिका सञ्चालन करने वाले—बराबर रङ्ग चढ़ाने वाले, एक ओर शब्दों द्वारा—दूसरी ओर रागिनीकी खुली मूर्त्ति खींच कर,—आवश्यकतानुसार-शृङ्गार-करुणा-वीर-शान्त और बरवा मालकोस—छाया आदि रसों और राग-रागिनियोंका दिव्य संयोग दिखाने वाले, योरपको भारतीय कविता और भारतीय संगातके उद्दाम छन्दां और कोमल-कठोर भावोंसे मुग्ध और चकित कर देने वाले महाकवि रवीन्द्रनाथ प्रथम भारतीय हैं ।

कलाको आदर्श स्थानपर प्रतिष्ठित करनेके लिये किस तरह साधारण जनोंकी सोमाको पार कर जाना पड़ता है, किस तरह से अनमोल शब्द शृङ्खलित भावोंके साथ स्वरको लड़ोमें पिरोये जाते हैं, आगे चलकर विश्व-कविके कुछ उद्धृत संगोतोंमें देखिये:—

(संगीत—१)

"अहा जागि पोहाल बिभावरी
क्लान्त नयन तव सुन्दरी ॥ १ ॥
म्लान प्रदीप ऊषानिल चञ्चल,
पाण्डुर शशधर गत अस्ताचल,
मुछो आंखींजल, चलो सखी चलो,
अंगे नीलाञ्चल संबरी ॥ २ ॥

शरत प्रभात-निरामय निर्मल,
शान्त समीरे कोमल परिमल,
निर्जन वनतल शिशिर-सुशीतल,
पुलकाकुल तरुवल्लरी ॥ ३ ॥
विरह-शयने केलि मलिन मालिका,
एसो नव भुवने एसो गो बालिका,
गांथी लह अंचले नव शेफालिका,
अलके नवीन फूलमञ्जरी ॥ ४ ॥

अर्थः—"अहा ! जगकर सारी रात तुमने बिता दी ! सुन्दरी ! तुम्हारी आंखोंमें थकन आ गई है ! ॥ १ ॥ दियेकी जोत मलिन पड़ गई है, चाँद मुरझाके अस्ताचलमें धँस गया है ; तुम अपने आंसू पोंछो,—चलो—सखी !—नीलाम्बरी साड़ीके अञ्चल-प्रान्तको देहमें सम्भाल लो ! ॥ २ ॥ (इस समय) शरतका प्रभात (कैसा) स्वास्थ्यकर और निर्मल हो रहा है। शान्त भावसे ढुरते हुए समीरके साथ कोमल परिमल भी आ रहा है, निर्जन बनका तल-भाग ओससे धुलकर शीतल हो गया है और द्रुम-लताएं पुलककी अतिशयतासे व्याकुल हो रही हैं ! ॥ ३ ॥ विरह-सेजपर अपनी मलिन माला छोड़कर आयि बालिका, इस नवीन संसारमें आओ ! शेफालिका (हरसिंगार) फूलोंकी नई माला अञ्चलमें गूंथ लो !—बालोंमें फूलोंकी नई मञ्जरी खोंस लो ! ४॥"

विश्वकविके इस संगीतका प्लाट (नक्सा) यह है:—पहले कविने आगत यौवना किसी कामिनीके विरहकी कल्पना की है,

उसे सारी रात प्रियतमकी प्रतीक्षा करनी पड़ी है। सेजपर प्रियतमकी प्रतीक्षामें—उसे भोर हो गया—आँखोंमें जागरणकी लालिमा और क्लान्ति आ गई है। नायिकाकी इस दशाको कवि-हृदय—अधिक देर तक नहीं देख सका—यहींसे उसके लिये कविकी सहानुभूति चित्रण-तुलिकाके सहारे उतरकर एक अपूर्व ढंगसे उसे संयोगका समाचार सुनाती है—सहानुभूतिसे लेकर समाचारके अन्ततक महाकविकी चित्रण-कुशलता गजब करती है—हृदयको बरबस अपनी ओर खींच लेती है। इस गीत-काव्यका श्रीगणेश करते हुए महाकवि अपने तुले हुए शब्दोंमें नायिकाके नयनोंके साथ समवेदना प्रकट करनेके लिये बढ़कर जब कहते हैं—

"अहा जागि पोहाल विभावरी
क्लान्त नयन तव सुन्दरी"

तब ये शब्द उनके रोम-रोमसे विरहिणीके लिये समवेदना सूचित कर देते हैं—नायिकाके विरह व्याकुल हताश भावको उनकी सहृदयता एक क्षण भी नहीं देख सकती। महाकविके उद्धृत पूर्वोक्त वाक्यमें, उनकी अथाह सहानुभूतिके साथ एक भाव जो और मिला हुआ है, वह है नायिकाकी उसी अवस्थासे गुजरकर महाकविका व्यक्तिगत अभिज्ञताका सञ्चय—मानों कवि भी यह विरहका दुःख भोग चुका है, और चूंकि उसे इस दुःखका यथार्थ अनुभव है, इसलिये नायिकामें अनुभवजन्य स्वजातीय भावका आवेश देख उसके (कविके) हृदयसे एक वह अपनापन

नायिकाकी ओर बढ़ रहा है जिसे सर्वथा हम स्वजातीय कह सकते हैं, और इसलिये इस सहानुभूतिमें एक खास सौन्दर्य्य आ गया है—दोनों हृदय मानों एक हो रहे हैं, फर्क इतना ही है कि एक ओर है जागरण जनित दुःख—बाट जोहकर थकी हुई छल छलाई आंखें, और दूसरी ओर है एक सच्चा सहृदय—मर्मज्ञ—अकारण प्यार करने वाला। सहृदय रवीन्द्रनाथ यहींसे नायिकाको मिलनभूमिकी ओर ले चलते हैं, वे विरहकी वर्णनामें इतनी 'हाय हाय' नहीं मचाते कि पाठक भी ऊब जायं; उधर, सहानुभूतिके कोरे शब्दोंसे ही नायिकाके प्रति सहृदयता प्रकट करके कवि अपनी मित्रताका उतना बड़ा परिचय हरगिज न दे सकते जितना बड़ा उन्होंने नायिकाको मिलन-मन्दिरकी ओर बढ़ा कर दिया है। महाकवि नायिकासे कहते हैं—

"म्लान प्रदीप उषानिल चञ्चल,
पाण्डुर शशधर गत अस्ताचल,
मुछो आंखीजल, चलो सखी चलो,
अंगे नीलांचल सबरी।"—

प्रथम दो पंक्तियोंमें प्रकृतिका चित्र है, फलकी पंक्तियोंमें नायिकाके लिये धैर्य और साथ साथ आशा। "अंगे नीलांचल सबरी" इस पंक्तिमें विशृङ्खल भावसे—ढके हुए अङ्गोंसे खुलकर इधर-उधर पड़े हुए नीलाम्बरी साड़ीके अञ्चल-भागको संभाल कर निकलनेके लिये कहकर कवि नायिकाको प्रियतमसे मिला देनेकी आशा दिलाता है। वस्त्र संभालनेकी ओर इशारा करके

महाकविने नायिका विरह-भावकी ओर भी इशारा किया है ; इस चित्रमें एक बहुत मामूली बात भी कविके ध्यानसे नहीं हटने पाई । विरहकी अवस्थामें वस्त्रका खुल जाना बहुत ही स्वाभाविक है, और मिलनेके पूर्व उसके संभालनेकी ओर इंगित करना उतना ही कवित्वपूर्ण । "चलो सखी चलो" इस वाक्यमें रवीन्द्रनाथ मानो नायिकाको प्यारी सखी बन जाते हैं ; यहां जब एक ओर क्षोभ अभिमान, विरह और निराशा नज़र आती है और दूसरी ओर—धैर्य, प्रेम, सहृदयता और आशाका आश्वासन मिलता है, तब हृदयमें कविताकी कैसी दो दिव्य मूर्तियां एका-एक खड़ी हो जाती हैं ! वर्णनाशक्तिकी सीमासे बाहर है । आगे चलकर महाकवि प्रकृतिमें स्वागतका चित्र दिखलाते हैं—"पुल-काकुल तरु वल्लरी" कहकर तरु और लताओंमें प्रभात समयका प्राकृतिक पुलक दिखलाते हुए, कल्पनाके द्वारा नायकके आ जानेका पुलक भी भर देते हैं । यहां प्रकृतिके सत्यसे कल्पनाके सत्यका मेल है, प्रकृतिके पुलकमें नायकके आगमनका पुलक है ।

"विरह-शयने फेलि मलिन मालिका,
एसो नव भुवने एसो गो बालिका" ।

यहां विरह-शय्यापर कलकी गूंथी हुई मलिन मालाको छोड़-कर बालिका (नवयौवनातरुणी) को नवीन संसारमें बुलानेका अर्थ यही है कि, महाकवि उसके संयोगकी सूचना देते हैं । उनका यह भाव और साफ हो जाता है जब वे कहते हैं—

"गांथी लह अञ्चले नव शेफालिका
अलके नवीन फूल मञ्जरी।"—

मलिन मालिकाको छोड़, अञ्चलमें नई शेफालिकाकी माला गूंथ लेने और बालोंमें पुष्प-मञ्जरीके खोंसनेका इशारा सूचित करता है संयोगका समय अब आ गया। अपनी दुःखिनी सखीको उसके प्रियतमके पास महाकवि इस तरह कवित्व-पूर्ण ढङ्गसे ले चलते हैं।

(संगीत—२)

"बाजिलो काहार बीना मधुर स्वरे
आमार निभृत नव जीवन परे॥ १॥
प्रभात-कमल-सम
फुटिलो हृदय मम
कार दुटि निरुपम चरण तरे॥ २॥
जेगे उठे सब शोभा सब माधुरी
पलके पलके हिया पुलके पुरी,
कोथा होते समीरण
आने नव जागरण,
परानेर आवरण मोचन करे॥ ३॥
लागे बुके सुखे-दुखे कतो जे व्यथा,
केमने बुझाये कबो जानी ना कथा।
आमार वासना आजि
त्रिभुवने उठे बाजि,

कांपे नदी बन-राजि वेदना-भरे ॥ ४ ॥

बाजिलो काहार वीना मधुर स्वरे ॥"

अर्थः—"मेरे निभृत (निर्जन) और नवीन जीवन पर यह मधुर स्वरसे किसकी वीणा बजी ? ॥ १ ॥ प्रभात-कमलकी तरह मेरा हृदय किसके दो निरुपम चरणोंके लिये विकसित हो गया ? ॥ २ ॥ पल-पलमें हृदयको पुलक-पूर्ण करके सम्पूर्ण शोभा—सम्पूर्ण माधुरी जग रही है। न जाने समीर कहाँसे नवीन जागरण ला रहा है (कि उसके स्पर्श मात्रसे शरीरमें सजीवता आ रही है)—इस तरह वह प्राणोंपर पड़े हुए पर्देको हटा देता है ।) जीवनकी जड़ता,मोह और आलस आदिको दूर कर देता है) ॥ ३ ॥ सुख और दुःखके समय हृदयमें न जाने व्यथाके कितने झोंके लगते हैं !—उन्हें मैं किस तरह समझाकर कहूं !—मुझे उसकी भाषा नहीं मालूम । आज मेरी ही वासनाएं सारे संसारमें मुखरित हो रही हैं । उनकी आहोंसे वृक्ष जङ्गल नदी आदि कांप रहे हैं । अचानक न जाने किसकी वीणा सुमधुर स्वरसे बज उठी ॥ ४ ॥

इस संगीतकी रचनामें महाकविने छायावादका आश्रय लिया है। यों तो जान पड़ता है कि कविता निराधार है—आसमानमें महल खड़ा करनेकी युक्तिकी तरह बे बुनियाद है, परन्तु नहीं, हृदयके सच्चे भावोंको चित्रका रूप देकर महाकविने इस कविता में जीवनकी अमर स्फूर्ति भर दी है। इस कवितामें जितना ऊंचा कवित्व है—प्राणोंकी भाषाका जितना उच्च विकाश है, उतना ही

गम्भीर दर्शन भी है। हमारे मनोज्ञ पण्डित कहते हैं, बाहरी संसारके साथ मनका जबरदस्त मेल है; जब मनमें किसी प्रकारका हर्ष अपनी मनोहर महिमा पर इतराता रहता है, तब उसका चित्र हमें बाहरी संसारमें भी देख पड़ता है,—उसकी छाया—वैसा ही भाव बाहरी संसारमें भी हम प्रत्यक्ष करते हैं,—मानों संसारका एकरकण हमारे सुखके साथ सहानुभूति रखता हुआ हमारे हर्षकी प्रतिध्वनि हमें सुना रहा है; और जब दुःखकी अधीरता हृदयको डावांडोल कर देती है, तब भी हम बाहर संसारमें मानों उसीकी मलिन रेखा पात-पातमें प्रत्यक्ष करते हैं। यहां, इस कवितामें महाकविके हृदयमें पहले सुखका अंकुर निकलता है, फिर वही वासनाके रूपमें फैलकर बढ़ जाता है—इतना बढ़ता है कि तीनों लोकको अपने विस्तारसे ढक लेता है। यही इस कविताकी बुनियाद है और चित्रणकी अपूर्व कुशलता इसका मनोहर शरीर। हृदयमें सुख-साम्राज्यके फैलकर वासनाकी वंशी छेड़नेके साथ ही महाकविके मुखसे निकलता है—

"बाजिलो कहार वीणा मधुर स्वरे
आमार निभृत नव जीवन परे"—

महाकविका जीवन नवीन है—एकान्तमें सुरक्षित है, और वहीं एक वीणा मधुर स्वरसे बजती है। हम कह चुके हैं यह सुखकी वीणा है, यौवनके निर्जन प्रान्तमें वीणा महाकविको मुग्ध करनेके लिये बज रही है। परन्तु यह किसकी वीणा है—बजाने वाला कौन है, यह कविको नहीं मालूम,—इतना ही रहस्य है—

यही रहस्यवाद—छायावाद है। यह जरूर है कि महाकविके यौवनकुञ्जकी हरी-भरी कुटीरमें महाकविके सिवा और कोई न था,—अपने यौवनकी पल्लवित महिमाको देख हृदयकी निर्जन कन्दरामें मधुर स्वरसे उसका स्वागत करनेवाले महाकवि ही थे, परन्तु अपनी सत्तापर ऐसे स्थलमें यदि वे जोर देकर—निश्चयपूर्वक कुछ कहते तो कविताका सौन्दर्य अवश्य ही नष्ट हो जाता ; अज्ञात यौवनाके यौवन और अंग-सम्बन्धी प्रश्नोंकी तरह महाकविने वीणा बजानेवाले पर अपनी अज्ञताका आरोप करके कविताको बहुत ही सुन्दर चित्रित कर दिया है। वीणा बजाने वाले वे स्वयं हैं, परन्तु अपनेको भूलकर वीणा बजाने वालेको जाननेके लिये उनकी उत्सकता स्वयं यहां कविता बन रही है। महाकविकी अज्ञता अन्तिम बन्दको छोड़कर और सब बेन्दिशोंमें है। वीणा बजनेके साथ साथ हृदय पर जो प्रभाव पड़ता है, उसका उल्लेख करते हुए लिखते हैं—

"प्रभात-कमल-सम
फुटिलो हृदय मम
कार दुटो निरुपम चरण तरे ।"—

वीणा-झंकारके होते ही प्रभात-कालके कमलकी तरह महाकविके हृदयके दल खुल जाते हैं और उनके इस प्रश्नसे कि—यह (हृदय) किसके दो अनुपम चरणोंके लिये विकसित हो गया ?—एक और अज्ञेयवाद खड़ा हो जाता है। महाकविके इस प्रश्नमें बहुत बड़ी कविता है। चित्रकार पद्मको अङ्कित

करके, उसपर षोड़शी कामिनी या किसी देवी-मूर्तिको खड़ी कर सौन्दर्य-ज्ञानकी हद कर देते हैं, उधर कवि भी कमलसे चरणोंकी उपमा देते हैं, यहां भी महाकविका हृदय वीणा ध्वनि सुनकर मानो किसी कामिनीके लिये कमलकी तरह विकसित हो जाता है। परन्तु वह कामिनी है कौन, यह महाकविको नहीं मालूम। हृदय-कमलका विकास किसी कामिनीके उस पर चरण रखनेके लिये ही हुआ यह ठीक है, कमल भी खिला है और कामिनीका वहां आना भी निस्सन्देह है, परन्तु वह कामिनी है कौन ?—कविको नहीं मालूम एक अज्ञात युवतीको वह अपना सम्पूर्ण हृदय देनेके लिये बढ़ा हुआ है। बढ़ा हुआ ही क्यों,—हृदयका विकास मानों दानके लिये ही हुआ है—उस पर उस कामिनीका स्वतः सिद्ध अधिकार है, हृदय वालेका जैसे वहां कुछ भी नहीं, जैसे युवती आकर कहे—"जब तक हृदय नहीं खिला था, तब तक तो वह तुम्हारा था, अब खुल कर हमारा है, चलो छोड़ो राह, जाने दो हमें अपने आसन पर।" पाठक ध्यान दें—किस खूबीसे रवीन्द्रनाथ हृदयका दान करते हैं, और वह भी एक उस युवतीको जिसके सम्बन्धमें वे कुछ भी नहीं जानते। हृदयके खुल जाने पर सारी शोभा और सम्पूर्ण माधुरीका जग जाना बहुत ही स्वाभाविक है, इस पर वे कहते हैं—

"जेगे उठे सब शोभा सब माधुरी
पलके-पलके हिया पुलके पुरी।"—

"कोथा होते समीरण
आने नव जागरण
पराने आवरण मोचन करे ।"

यहां उन्होंने सिर्फ हवाकी करामात दिखलाई है कि वह अङ्गोंका स्पर्श करके किस तरह उनमें नया जागरण—नवीन स्फूर्ति पैदा करती—प्राणों पर पड़े हुए जड़ आवरणको हटा देती है; परन्तु आगे चलकर अपनी वासनाके साथ बाहरी प्रकृतिकी सहानुभूति दिखलाते हुए उन्होंने चित्रण-कुशलताकी हद कर दी है—

"आमार वासना आजि
त्रिभुवने उठे बाजि,
कांपे नदी वन राजि वेदना-भरे ।"

यहां महाकवि पत्तियों और लहरोंको कांपते हुए देख कर जो यह कहते हैं कि आज मेरी ही वासनाका डंका तीनों लोकमें बज रहा है और इसीसे वन और नदियोंमें वेदनाका संचार दीख पड़ता है—वे कांप रहे हैं, इससे कविता पूर्ण रूपसे खुल जाती है, कवि-हृदयको बिम्बित कर दिखानेके लिये एक बहुत ही साफ आइनेका काम करती है ।

(संगीत—२)

"आजि शरत-तपने, प्रभात-स्वपने
कि जानि परान कि जे चाय ॥ १ ॥
ओइ शेफालीर शाखे कि बोलिया डाके,

विहग-विहगी कि जे गाय ॥ २ ॥

आजि मधुर बातासे, हृदय उदासे,

रहे ना आवासे मन हाय ! ॥ ३ ॥

कोन कुसुमेर आशे,कोन फूलो वासे,

सुनील अकाशे मन धाय ॥ ४ ॥

आजि के जेनो गो नाई, ए प्रभाते ताई

जीवन विफल होय गो ॥ ५ ॥

ताइ चारी दिके चाय, मन केंदे गाय,

"ए नहे, ए नहे, नोय गो !" ॥ ६ ॥

कोन स्वप्नेर देशे, आछे एलो केशे,

कोन छायामयी कमराय ! ॥ ७ ॥

आजि कोन उपवने, विरह-वेदने

आमारी कारणे केंदे जोय ॥ ८ ॥

आमि यदि गायी गान, अधिर परान,

से गान सुनावो कारे आर ॥ ९ ॥

आमी यदि गांथी माला, लये फूल-डाला,

काहारे परावो फूल हार ॥ १० ॥

आमी आमार ए प्राण यदि करी दान

दिबो प्राण तबे कार पाय ॥ ११ ॥

सदा भय होय मने पाछे अजतने

मने मने केहो व्यथा पाय ॥ १२ ॥

अर्थः—"आज शरदृऋतुके सूर्योदयमें—प्रभातके स्वप्नकालमें

जी न जाने क्या चाहता है? ॥ १ ॥ उस शेफालिका (हरसिङ्गार) की शाखा पर बैठे हुए विहङ्ग और विहङ्गी क्या जानें क्या कह-कहकर एक दूसरेको पुकारते हैं और उनके गानेका अर्थ भी क्या है?" ॥ २ ॥ आजकी मधुर वायु प्राणोंको उदास कर देती है—हाय!—घरमें मन भी नहीं लगता! ॥ ३ ॥ न जाने किस फूलकी आशासे किस सुगन्धिके लिये मन नीले आसमान की ओर बढ़ रहा है! ॥ ४ ॥ आज—न जाने वह कौन—एक अपना मनुष्य मानों नहीं है, इसीलिये इस प्रभातकालमें मेरा जीवन विफल हो रहा है! ॥ ५ ॥ इसीलिये मन चारों ओर हेरता है, और जो कुछ भी उसकी दृष्टिमें आता है, उसे देखकर व्यथाके शब्दोंमें गाते हुए कहता है—"यह वह नहीं है—वह (कदापि) नहीं" ॥ ६ ॥ न जाने किस स्वप्नदेशकी छायामयी अमरावतीमें वह मुक्तकेशी (इस समय) है ॥ ७ ॥ आज न जाने किस उद्यानमें वह विरहकी वेदनामें भरी हुई आती है, और मेरे लिये वहांसे रोकर चली जाती है ॥ ८ ॥ मैं अगर किसी संगीतकी रचना भी करूं,—संगीतोंकी माला गूंथूं, तो प्राणोंके अधीर होने पर वे संगीत—फिर मैं किसे सुनाऊंगा? ॥ ९ ॥ और अगर फूलोंकी माला गूँथूं तो वह हार भी मैं किसे पहनाऊं? ॥ १० ॥ अगर मैं अपने प्राणोंका दान करना चाहूं तो किसके चरणोंमें मैं इन्हें समर्पित करूं? ॥ ११ ॥ मेरा मन सदा डरता रहता है कि कहीं ऐसा न हो कि मेरी त्रुटिसे हृदयमें किसीको चोट लगे ॥ १२ ॥"

यह चित्र कविके उदास भावका है। जिस समय प्राणोंमें एक खोई हुई वस्तुके लिये मौन प्रार्थना गूंजती रहती है, कभी कभी ऐसा भो होता है कि प्रार्थनाका आभास मात्र रहता है परन्तु क्यों और किसके लिये वह प्रार्थना होती है, यह बात प्यासे हृदयको नहीं मालूम होती। इस संगीतमें महाकविकी वैसी ही दशा है। शरदृतुके स्वर्ण-प्रभातको देखते ही महाकविके हृदयमें एक आकांक्षा घर कर लेती है। सौन्दर्यके साथ आकांक्षा, पुष्पके साथ कीट, यह ईश्वरीय नियम है। इस नियमका बन्धन कविको भी स्वीकृत है। मनुष्यको सीमामें रहकर अपनी रागिनीको—अपने प्रकाशको असीम सौन्दर्यमें मिला देनेकी कुशलतामें रवीन्द्रनाथ अद्वितीय हैं। वे प्रत्येक वस्तुके साथ अपने हृदयको मिलाकर उसकी महत्तासे अपनेको महान करना जिस तरह जानते हैं, उसी तरह अपने हृदयकी भाषासे संसारके हृदयोंको मुग्ध कर लेना भो उन्हें मालूम है। उनके इस संगीतमें उदास स्वर बज रहा है, यह उदासीनता शरतकालके स्वप्नसुन्दर प्रभातको देखकर आती है। इस उदासीमें प्राणोंकी खोई हुई वस्तुका अभाव है और उसीके लिये मन आकाशके एक अजाने छोरमें उड़ जाता है। इस उक्तिकी स्वाभाविक छटा देखने ही लायक है। महाकविके मन की ही बात नहीं, मनुष्यमात्रके मनमें जब उदासीनताकी घटा घिर आती है, तब उस उच्चाटनके साथ वह न जाने किस एक अजाने देशमें अपने हृदयको छोड़कर उड़ता फिरता है। इस भावको महाकविकी भाषा किस अद्भुत ढंगसे अदा करती है, देखिये—

"कोन कुसुमेर आशे, कोन फूल वासे,
सुनील आकाशे मन धाय ।"

आसमानमें जिसके लिये मन चक्कर काट रहा है, कविको उसका परिचय नहीं मालूम। यह बात उसे आगे चलकर मालूम होती है—वह अपनी उदासीनताका कारण समझता है। परन्तु समझनेसे पहले मन हर एक वस्तुको पकड़कर, उसे उलट-पुलट कर देखता था और उसे अपनी उदासीनताका कारण न समझ कर छोड़ देता था, जैसा स्वभावतः किसी भूले हुए आदमीकी याद करते समय लोग किया करते हैं—जो नाम या जो स्वरूप मनमें आता है वे प्राचीन स्मृतिके सामने पेश करते और वहांसे असम्मतिकी सूचना पाकर उसे छोड़ दूसरा नाम या दूसरा स्वरूप पेश करते हैं, जबतक स्मृति किसी नाम या स्वरूप को स्वीकृत नहीं करती तब तक इजलासके गवाहोंकी तरह नाम या रूप पेश होते रहते हैं। इस तरहकी पेशी महाकविके उदास मनमें भी होती है, वे कहते हैं—

"आजि के जेनो गोनाई, ए प्रभाते ताई
जीवन विफल होय गो
ताई चारि दिके चाय मन केंदे गाये,
'ए नहे, ए नहे, नोय गो' ।"

जिसके लिये मन रो रहा है, उसकी सम्पूर्ण स्मृति महाकवि भूले हुए हैं—मनके सामने जिस किसीको वे पेश करते हैं उसके लिये मन कह देता है, "यह नहीं है, मैं इसे नहीं चाहता।"

इसके पश्चात् महाकविको मचले हुए मनकी प्रार्थना-मूर्ति याद आती है और अपूर्व कवित्वमें भरकर वे अपनी भाषाकी तूलिका द्वारा उसे चित्रित करते हैं—

"कोन स्वपनेर देशे आछे एलो केशे
कोन छायामयी अमराय ।
आजि कोन उपवने विरह-वेदने
आमारि कारणें केंदे जाय ।"

कविकी प्रेयसी वह खुले बालोंवाली किसी छायामयी अमर-पुरीकी रहनेवाली है । अब इतनी देर बाद उसकी याद आई। साथ ही महाकवि अपने उच्चाटनकी मदिरा उसकी भी आंखोंमें छल-कती हुई देखते हैं और यही स्वर उसके भी कण्ठसे सुनते हैं। वह वहां किसी उद्यानमें विरहव्यथासे भरी हुई आती है और उनके लिये रोकर चली जाती है ।

उस विरह-विधुर-सुरपुरवासिनीकी याद करके महाकविको भाषाके धागेमें संगीत पिरोना बिलकुल भूल जाता है, वे इससे उदास हो जाते हैं, क्योंकि जिन चरणोंमें संगीतकी लड़ी उप-हारके रूपमें रक्खी जाती है, वे उनसे बहुत दूर हैं—वहां तक उनकी पहुंच किसी तरह हो नहीं सकती। इस हताश भावकी ध्वनिमें संगीत भी गूंजकर समाप्त हो जाता है—व्यथाके बादल कुछ बूंदे टपकाकर जलती हुई जमीनको और जला जाते हैं।

(संगीत—४)

"लेगेछे अमल धवल पाले मन्द मधुर हावा

देखी नाई कभू देखी नाई एमन तरणी बात्रा
कोन् सागरेर पार होते आने
कोन सुदूरेर धन।
भेसे जेते चाय मन;
फेले जेते चाय यई किनाराय
सब चावा सब पावा ॥ २ ॥
पिछने झरिछे झर-झर जल
गुरु गुरु देया डाके,
मुखे एसे पड़े अरुण किरण
छिन्न मेघेर फांके।
ओगो काण्डारी, केगो तुमी, कार
हासी कान्नार धन।
भेबे मरे मोर मन,
कोन सुरे आज बांधिबे यन्त्र
कि मन्त्र होबे गावा ॥ ३ ॥

अर्थः—"मेरे इस साफ और सफेद पालमें हवाके मधुर-मन्द झोंके लग रहे हैं, इस तरहसे नावका खेना मैंने कभी नहीं देखा ॥ १ ॥ भला किस समुद्रके पारसे—किस दूर देशका धन इसमें खिंचा आ रहा है?—मेरा मन वहां बह कर-पहुंच-जाना चाहता है, और साथ ही,—इधर—इस किनारे पर सारी प्रार्थना और सम्पूर्ण प्राप्तियोंको छोड़ जाना चाहता है ॥ २ ॥ पीछे झर-झर-स्वरसे जल झर रहा है, मेघोंमें गर्जना हो रही है,
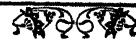
ओर कभी छिन्न बादलोंके छेदसे सूर्यकी किरणें मेरे मुख पर आ गिरती हैं, ऐ नाविक, तुम कौन हो ?—किसके हास्य ओर आंसुओंके धन हो ? मेरा मन सोच-सोच कर रह जाता है; तुम आज किस स्वरमें बाजा मिलाओगे—कौनसा मन्त्र आज गाया जायगा ? ॥ ३ ॥"

(संगीत—५)

"यामिनी ना जेते जागाले ना केनो,
बेला होलो मरी लाजे ॥ १ ॥
सरमें जड़ित चरणे केमने
चलिब पथेर माझे ॥ २ ॥
आलोक परशे मरमें मरिया
देखो लो शेफालो पड़िछे झरिया,
कोनो मते आछे परान धरिया
कामिनी-शिथिल साजे ॥ ३ ॥
निबिया बांचिलो निशार प्रदीप
उषार बातास लागी;
रजनीर शशी गगनेर कोने
लुकाय शरण मांगी !
पाखी डाकी बोलै—गैलो विभावरी;
बधू चलै जलै लोइमा गागरी,
आमी ए आकुल कवरी आवरी
केमने जाइबो काजे ॥ ४ ॥"

अर्थः—"रात बीतनेसे पहले तुमने मुझे क्यों नहीं जगाया ? —दिन चढ़ गया—मैं लाजों मर रही हूं ॥ १ ॥ भला बताओ तो—इस हालतमें जब कि मारे लज्जाके मेरे पैर जकड़ से गये हैं, मैं रास्ता कैसे चलूं ? ॥ २ ॥ आलोकके स्पर्श मात्रसे मारे लज्जाके संकुचित होकर—वह देखो—शेफालिकाएं (हरसिं-गारके फूल) झड़ी जा रही हैं, और इधर मेरी जो दशा है—क्या कहूं, अपनी इस शिथिल सज्जाको देख किसी तरह हृदय को संभाले हुए हूं ॥ ३ ॥ उषाकी वायुसे बुझकर बेचारे निशा के प्रदीपकी जान बची,—उधर, रातका चांद आसमानके कोनेमें शरण लेकर छिप रहा है, पक्षी पुकार कर कहते हैं—"रात बीत गई", बगलमें घड़ा दबाये हुए, बहुएं पानी भरनेके लिये जा रही हैं,—इस समय मैं खुली हुई अपनी व्याकुल वेणीको ढक रही हूं, भला बताओ तो—कैसे मैं इस समय काम करनेके लिये बाहर निकलूं ?"

(संगीत—६)

"हेला फेला सारा बेला एकी खेला आपन सने ॥ १ ॥
यई वातासे फूलेर बासे मुख खानी कार पड़े मने ॥ २ ॥
आंखीर काछे बेड़ाय भासी,
के जाने गो काहार हासी,
दुटी फोंटा नयन सलिल रेखे जाय यई नयन कोन ॥ ३ ॥
कोन छायाते कोन उदासी
दूरे बाजाय आलस बांसी,

मने होय कार मनेर वेदना केंदे बेड़ाय बांसीर गाने ॥ ४ ॥
सारा दिन गांथी गान,
कारे चाहे गाहे प्राण,
तरु तले छायार मतन बोसे आछी फूलो बंने ॥ ५ ॥

अर्थः—"सब समय हृदयमें विरक्तिके ही भाव बने रहते हैं; यह अपने साथ खेल हो रहा है? ॥ १ ॥ इस बातासमें, फूलों की सुवासके साथ जिसकी याद आती है, वह मुख किसका है? ॥ २ ॥ आंखोंके आगे वह तैरती फिरनेवाली किसकी हँसी है जो दो बूंद आंसू इन आंखोंके कोनेमें रख जाया करती है? ॥ ३ ॥ वह उदासीन कौन है—दूर न जाने किस छायामें अलस भावसे बंसी बजा रहा है, जीमें आता है—हो-न-हो यह किसीके मनकी वेदना होगी—बांसुरीके गीतके साथ रोती फिर रही है ॥ ४ ॥ दिनभर मैं संगीतकी लड़ियां गूँथा करता हूं,—क्यों—किसे मेरा हृदय चाहता है?—किसके लिये गाया करता है?—इस पेड़के नीचे छायाकी तरह मैं किसके लिये फुलवाड़ीमें बैठा हुआ हूं? ॥ ५ ॥"

(संगीत—७)

"आमाय बाँधबे यदि काजेर डोरे
केन पागल करो एमन कोरे? ॥ १ ॥
बातास आने केन जानी
कोन गगनेर गोपन वाणी
परान खानी देय जे भोरे ॥ २ ॥
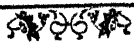
(पागल करो एमन कोरे ॥)

सोनार आलो केमने हे
रक्ते नाचे सकल देहे ॥ ३ ॥
कारे पाठाव क्षणे क्षणे
आमार खोला वातायने,
सकल हृदय लेये जे हरे ।
पागल करे एमन कोरे ॥ ४ ॥"

अर्थः—"मुझे अगर तुम कार्यके भागोंसे बांधना चाहते हो, तो इस तरह मुझे पागल क्यों कर रहे हो ? ॥ १ ॥ मैं भला क्या जानूं कि क्यों वातास वह एक किस आकाशकी गुप्त वाणी ले आती है, फिर मेरे इन प्राणोंको वह पूर्ण कर देती है ॥ २ ॥ न जाने क्यों, किस तरह स्वर्ण-रश्मियां खूनके साथ मेरे तमाम देहमें नाचती रहती हैं ॥ ३ ॥ तुम किसे बार-बार मेरे खुले हुए झरोखेके पास भेजते हो ? वह मेरे सम्पूर्ण हृदयको हर लेता है और इस तरह मुझे पागल कर देता है ॥ ४ ॥"

(संगीत—८)

"तोमारि रागिनी जीवन-कुञ्जे
बाजे जेनो सदा बाजे गो ॥ १ ॥
तोमारि आसन हृदय-पद्मे
राजे जेनो सदा राजे गो ॥ २ ॥
तव नन्दन-गन्ध-मोदित
फिरि सुन्दर भुवने,

तव पद-रेणु माखिलये तनु
साजे जेनो सदा साजे गो ।३।

सब विद्वेष दूरे जाय जेनो
तव मङ्गल - मन्त्रे
विकाशे माधुरी हृदय बाहिरे
तव संगीत-छंदे ! ॥ ४ ॥

तव निर्मल निरव हास्य
हेरी अम्बर व्यापिया,
तव गौरवे सकल गर्व
लाजे जेनो सदा लाजे गो ॥ ५ ॥"

अर्थः—"मेरे प्राणोंके कुञ्जमें मानों सदा तुम्हारी ही रागिनी बज रही है ॥ १ ॥ मेरे हृदयके पद्मपर मानों सदा तुम्हारा ही आसन अवस्थित है ।। २ ।। नन्दन-वनकी सुगन्धसे मोद मग्न तुम्हारे सुन्दर भवनमें मैं विचरण करता हूं, ऐसा करो कि मेरा शरीर तुम्हारे चरणोंकी रेणु धारण करके सजा हुआ रहे ॥ ३ ॥ सब द्वेष तुम्हारे मंगल मन्त्रके प्रभावसे दूर हो जाय, तुम्हारे संगीत और छंदोंके द्वारा तुम्हारी माधुरी मेरे हृदयमें और बाहर विकसित हो रहे ॥ ४ ॥ तुम्हारे निर्मल और नीरव हास्य को मैं सम्पूर्ण आकाशमें फैला हुआ देखूं, इस तरह तुम्हारे गौरवके आगे मेरा सारा गर्व लज्जित हो जाय ॥ ५ ॥

(संगीत—६)

"सकल गर्व दूर करि दिबो

तोमार गर्व छाड़िबो ना ॥ १ ॥

सबारे डाकिया कहिब, जे दिन

पाब तव पद रेणु-कण ॥ २ ॥

तव आह्वान आसिबे जखन

से कथा केमने करिबो गोपन ?

सकल वाक्ये सकल कर्मे

प्रकाशिबे तव अराधना ॥ ३ ॥

अतो मान आमी पेयेछि जे काजे

से दिन सकलि जाबे दूरे

शुधू तव मान देहे मने मोर

बाजिया उठिबे एक सुरे !

पथेर पथिक सेओ देखे जाबे

तोमार बारता मोर मुख भावे,

भव संसार वातायन-तले

बोसे रबो जबे आनमना ॥ ४ ॥

अर्थ :—मैं अपना और सब गर्व दूर कर दूंगा, परन्तु तुम्हारे लिये मुझे जो गर्व है, उसे मैं कदापि न छोड़ूंगा ॥ १ ॥ सब लोगोंको पुकारकर मैं कह दूंगा जिस दिन तुम्हारी चरणरेणु मुझे मिल जायगी (तुम्हारी कृपाके मिलते ही मैं दूसरोंको पुकार कर उसका हाल उन्हें सुना दूंगा—तुम्हारी कृपाप्राप्तिके लिये उनमें भी उत्साह भर दूंगा।) ॥ २ ॥ तुम्हारी पुकार जब मेरे पास आयेगी, तब उसे मैं कैसे गुप्त रख सकूंगा ?—मेरे सब
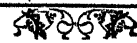
वाक्यों और सम्पूर्ण कार्योंसे तुम्हारी पूजा प्रकट होगी ॥ ३ ॥ मेरे कार्यसे मुझे जो सम्मान मिला है, उस दिन इस तरहके सब सम्मान दूर हो जायंगे, एक मात्र तुम्हारा मान मेरे शरीर और मनमें एक स्वरसे बजने लगेगा ; चाहे रास्तेका पथिक क्यों न हो, पर वह भी मेरे मुखके भावसे तुम्हारा सन्देश देख जायगा, जब इस संसार रूपी झरोखेके नीचे मैं अनमना हुआ बैठा रहूंगा ॥ ४ ॥"

(संगीत—१०)

अल्प लइया थाकी ताई मोर
जाहा जाय ताहा जाय ॥ १ ॥
कणाटुकु यदि हाराय ता लये
प्राण करे हाय हाय ॥ २ ॥
नदी-तट सम केवलि बृथाई
प्रवाह आंकड़ि राखिबारे चाई,
एके एके बुके आघात कोरिया
ढेउ गुलि कोथा धाय ॥ ३ ॥
जाहा जाय आर जाहा किछू थाके
सब यदि दी सोंपिया तोमाके
तबे नाहीं क्षय, सवि जेगे रय
तव महा महिमाय ॥ ४ ॥
तोमाते रयेछे कतो शशी-भानु,
कभु ना हाराय अणु-परमाणु